Printed by.—
Banshidhar at his " Shridhar " Printing press, Shukrawar peth 477 Sholapur.

Published by —
Nathuram Premi, Secretary of Manikchand granthamala Hirabag Girgaon Bombay.

संपादकीयवक्तव्यम्.

प्रथमतो दोहारूपेण द्रव्यस्वभावप्रकाशो नाम ग्रन्थ आसीद् तदनु ग्रन्थ एको नयचक्रनामा गाथारूपेण श्रीमाहिल्लदेवेन रचितः । स नष्ट इति श्रीदेवसेनगुरुणा ग्रन्थोऽयं पुनारचित इति प्रशस्त्यन्तिमया प्रकटीभवति ।

तद्यथा,

" दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं ।
गाहाबंधेण पुणो रइयं माइल्लदेवेण ॥
दुसमीरणेण पोयंपेरिय संतं जहा तिरं णट्ठं ।
सिरिदेवसेणमुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥ "

अत्र समन्तभद्रादीनां प्राचामाचार्याणां बहूनि वचनान्युद्धृतान्युपलभ्यन्ते तानि अपि मूलप्रकाशे समवलोकनीयानि । अस्मिन् प्रकाशितोपि विचाराणां क्रम यथासंख्यानुक्रमेण । एवं सूत्राणामुद्धृतवचनानां च सूची आकारादिक्रमेण दर्शिता । प्राक्तन लघुनयचक्रनामा ग्रंथो विशिष्टविषयत्वेन योजितस्ततो बृहन्नयचक्र [illegible] माते । लघुनयचक्रे नयोपनयानां स्वरूपमुदाहरणानि च सन्ति बृहति त्वत्र द्रव्यगुणपर्यायाणां सामान्यतो विशेषतश्च स्वरूपं वर्णि[illegible] रत्नत्रयस्वरूपं चास्ति । सूत्राणां प्राक् संस्कृतभाषया या टिप्पणी [illegible] सर्वत्र वर्तते सा प्राचीना, प्राकृतमूलानां या च छाया

इत्येतत् सुविदितोऽस्तु—

निवेदक—
वंशीधरः ।

अधिकारसूची.

नयचक्र ।



आचार्य विद्यानन्दने अपने श्लोकवार्तिक (तत्त्वार्थसूत्र टीका) के नयविवरण नामक प्रकरणके अन्तमें लिखा है.—

> संक्षेपेण नयास्तावद्व्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।
> तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

अर्थात् तत्त्वार्थसूत्रमें जिन नयोंका उल्लेख है, उनका हमने संक्षेपमें व्याख्यान कर दिया। यदि उनका विस्तारसे और विशेष पूर्वक स्वरूप जाननेकी इच्छा हो तो ' नयचक्र ' से जानना ।

इस उल्लेखसे मालूम होता है कि विद्यानन्द स्वामीसे पहले ' नयचक्र ' नामका कोई ग्रन्थ था जिसमें नयोंका स्वरूप खूब विस्तारके साथ दिया गया है। परन्तु यह नयचक्र यही देवसेनसूरिका नयचक्र था, ऐसा नहीं जान पडता। क्योंकि यह बिलकुल ही छोटा है। इसमें कुल ८७ गाथायें हैं और माइल्ल धवलके बृहत् नयचक्रमें भी नय सम्बन्धी गाथाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं है। इन दोनों ही ग्रन्थोंमें नयोंका स्वरूप बहुत संक्षेपमें लिखा गया है। इनसे अधिक तो स्वामी विद्यानन्दने ही नयविवरणमें लिख दिया है। नयविवरणकी श्लोकसंख्या ११८ है। और उनमें नयोंका स्वरूप बहुत ही उत्तम रीतिसे—नयचक्रकी भी अपेक्षा स्पष्टतासे—लिखा है। ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि श्लोक-

वार्तिकके कर्ता अपने पाठकोंसे देवसेनसूरिके नयचक्रपरसे विस्तारपूर्वक नयोंका स्वरूप जाननेकी सिफारिश करते। इसके सिवाय जैसा आगे चलकर बतलाया जायगा, देवसेनसूरि कुछ भी विद्यानन्द स्वामीके पीछे हैं। अतः श्लोक वार्तिकमें जिस नयचक्रका उल्लेख है, वह कोई दूसरा ही नयचक्र होगा।

श्वेताम्बरसंप्रदायमें ' मल्लवादि ' नामके एक बडे भारी तार्किक हो गये हैं। आचार्य हरिभद्रने अपने ' अनेकांत (१) जयपताका ' नामक ग्रंथमें वादिमुख्य मल्लवादिकृत ' सम्मति (२) टीका ' के कई अवतरण दिये हैं और श्रद्धेय मुनि जिनविजयजीने अनेकानेक प्रमाणोंसे हरिभद्रसूरिका समय (३) वि. स० ७५७ से ८२७ तक सिद्धकिया है। अतः आचार्य मल्लवादि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके पहलेके विद्वान् हैं, यह निश्चय है। और विद्यानन्दस्वामी विक्रमकी ९ वीं शताब्दिमें (४) हुए हैं, यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है।

उक्त मल्ल वादिका भी एक ' नयचक्र ' नामका ग्रंथ है जिसका पूरा नाम ' द्वादशार—नयचक्र ' है। जिसतरह चक्रमें आरे होते हैं, उसी तरह इसमें बारह आरे अर्थात्

---

१ अहमदाबादमें शेट मनसुखभाई भगुभाईके द्वारा छप चुका है। २ यह आचार्य सिद्धसेनसूरिके ' सम्मतितर्क ' नामक ग्रंथकी टीका है। ३ देखो, जैन साहित्यसंशोधक अंक। ४ देखो जैनहितैषी भर्ग ९ अंक ९।

व्याय है । यह ग्रंथ बहुत बड़ा है । इसपर आचार्य
ोभद्रजी की बनाई हुई एक टीका है जिसकी श्लोकसंख्या
८००० है । यह अनेक श्वेताम्बर पुस्तकालयोंमें उपलब्ध
। संभव है कि विद्यानन्दस्वामीने इसी नयचक्र को लक्ष्य करके
ांक सूचना की हो । जिसतरह हरिवंशपुराण और आदि
ाणके कर्त्ता दिगंबर जैनाचार्योंने सिद्धसेनसूरिकी प्रशंसा की
जो कि श्वेताम्बराचार्य समझे जाते हैं उसी तरह विद्या-
न्दस्वामीने भी श्वेताम्बराचार्य मल्लवादिके ग्रंथको पढ़नेकी सि-
ारिश की हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । जिस तरह
िद्धसेनसूरि तार्किक थे उसी तरह मल्लवादि भी थे और दि
म्बर और श्वेतांबर सम्प्रदायके तार्किक सिद्धांतोंमें कोई मह-
्वका मतभेद भी नहीं है । अब नयचक्र जैसे एक श्वेताम्बर
के ग्रन्थका उल्लेख एक दिगम्बराचार्य द्वारा किया जाना हमें
ी असंभव नहीं मालूम होता । अनेक श्वेतांबर ग्रन्थकर्त्ताओंने
ी इसी तरह दिगंबर ग्रन्थकारोंकी प्रशंसा की है और उनके
ग्योंके हवाले दिये हैं ।

यह भी संभव है कि देवसेनके अतिरिक्त अन्य किसी दि-
ंबराचार्यका भी कोई नयचक्र हो और विद्यानन्दस्वामीने उसका
ल्लेख किया हो । माइल्लधवलके बृहत् नयचक्रके अन्तमें एक
गाथा जो केवल बम्बईवाली प्रतिमें है, मोरेनावाली प्रतिमें नहीं है
—यदि ठीक हो तो उससे इस बातकी पुष्टि होती है । वह गाथा

इस प्रकार है:—

> दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं जहा ति (चि) रं नई।
> सिरिदेवसेन मुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥

इसका अभिप्राय यह है कि दुःषमकालरूपी आँधीसे (जहाज) के समान जो नयचक्र चिरकालसे नष्ट हो गया उसे देवसेन मुनिने फिरसे रचा। इससे मालूम होता है देवसेनके नयचक्रसे पहले कोई नयचक्र था जो नष्ट हो गया था और बहुत संभव है कि देवसेनने यह उसीका संक्षिप्त उ[illegible] किया हो।

उपलब्ध ग्रन्थोंमें नयचक्र नामके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके इस अंकमें वे तीनों ही नयचक्र प्रकाशित किये जाते हैं। १ आलापपद्धति, २ लघुनयचक्र, और ३ बृहत् नयचक्र। इनमेंसे पहला ग्रन्थ आलापपद्धति संस्कृतमें और शेष दो प्राकृतमें।

* आलापपद्धतिके कर्त्ता भी देवसेन ही हैं। डा० भा[illegible] [illegible] पुस्तकालयमें इस ग्रन्थकी एक प्रति है, उ[illegible] अन्तमें [illegible] लिखा है— "इति सुखबोधार्थमालापपद्ध[illegible] [illegible] समाप्ता। इति श्रीनयचक्रं सम्पूर्णम्॥" [illegible] [illegible] भी यह नयचक्र नामसे ही दर्ज है [illegible] [illegible]

● सन् १८८४–८६ [illegible]

किया है। पं० शिवजी लालजीकृत दर्शनसार-वचनिकामें देव-सेनके संस्कृत नयचक्रका जो उल्लेख है, वह भी जान पड़ता है, इसी आलापपद्धतिको लक्ष्य करके किया गया है। यद्यपि आलाप-पद्धतिमें नयचक्रका ही गद्यरूप साराश है और वह नयचक्रके ऊपर ही की गई है, इसलिए कुछ लोगों द्वारा दिया गया उसका यह ' नयचक्र ' नाम एक सीमातक क्षम्य भी हो सकता है, परन्तु वास्तवमें इसका नाम ' आलापपद्धति ' ही है—नयचक्र नहीं।

आलापपद्धतिके प्रारंभमें ही लिखा है– " आलापपद्धतिर्वच-नरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते। " इससे मालूम होता है कि आलापपद्धति नयचक्रपर ही प्रश्नोत्तररूप संस्कृतमें लिखी गई है। आलाप अर्थात् बोलचालकी पद्धतिपर अथवा वचनरच-नाके ढगपर यह ' सुखबोधार्थ ' या सरलतासे समझमें आनेके लिए बनाई गई है। इसकी प्रत्येक प्रतिमें इसे ' देवसेनकृता ' लिखा भी मिलता है, इससे यह निश्चय हो जाता है कि यह नय-चक्रके कर्त्ता देवसेनकी ही रची हुई है—अन्य किसीकी नहीं।

२ लघुनयचक्र । श्रीदेवसेनसूरिका वास्तविक नयचक्र यही है। इसके साथ जो ' लघु ' विशेषण लगाया गया है वह इसके आगेके ग्रंथको बड़ा देखकर लगा दिया गया है; परंतु वास्तवमें उसका नाम द्रव्यस्वभाव प्रकाश है और उसके कर्त्ता माइल्लधवल हैं जैसा कि आगे सिद्ध किया गया है। इसलिये इसका नयचक्रके ही नामसे उल्लेख किया जाना चाहिए।

श्वेतांबराचार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने ' द्रव्यगुणपर्यय रासा ' [गुजराती] में देवसेनके नयचक्रका कई जगह उल्लेख किया है और उक्त रासेके आधारसे ही लिखे हुए द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद किया है । एक उल्लेख इस प्रकार है:—

नयाश्चोपनयाश्चैवं तथा मूलनयावपि ।
इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥८॥

एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव द्वौ मूलनयावपि निश्चयेनेत्थममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता तत्पादेन समादिष्ट कथितं । एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिकं सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतत्त्वमेवास्ते न किमपि विसंवादितयास्तीति * । "

उक्त ' तर्कणा ' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह बिल्कुल ' नयचक्र ' का अनुवाद है और इसे स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भोजसागरने स्वीकार किया है । इससे निश्चय हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता भोजसागर इसी नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ समझते थे।

* देखो रायचन्द्रशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ' द्रव्यानुयोगतर्कणा ' अध्याय ८ श्लोक ८ पृष्ठ ११५ ।

दर्शनसारकी वचनिकाके कर्ता पं. शिवजीलालजीने देवसेन-सूरिके बनाये जिन सब ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमें प्राकृत नयचक्र भी है। अर्थात् उनके मतसे भी यह देवसेनकी ही कृति है।

यह ग्रन्थ बृहत् नयचक्र (द्रव्यस्वभाव प्रकाश) में से छाँटकर जुदा निकाला हुआ नहीं है। यह बात इस ग्रंथको आदिसे अन्ततक अच्छी तरह बाँच लेनेसे ही ध्यानमें आ जाती है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ है। और स्वतंत्र है। यह इसकी रचना पद्धतिसे ही मालूम हो जाता है। नयोंको छोड़कर इसमें अन्य विषयोंका विचार भी नहीं किया गया है। इसके अंतकी नं. ८६ और ८७ की गाथाओंसे (पृष्ठ १९–२०) यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसका नाम नयचक्र ही है– उसके साथ कोई 'लघु' आदि विशेषण नहीं है।

२ बृहत् नयचक्र इसका वास्तविक नाम 'दव्वसहावपयास' (द्रव्यस्वभाव-प्रकाश) या ' द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र ' है। ग्रंथकर्त्ताने स्वयं इस नामको ग्रंथके प्रारंभमें और अंतमें कई जगह व्यक्त किया है। नयचक्र तो इसका नाम हो ही नहीं सकता है, क्योंकि नयोंके अतिरिक्त द्रव्य, गुण, पर्याय, दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि अन्य अनेक विषयोंका इसमें वर्णन किया गया है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है। जिसतरह इसमें भगवत्कुंदकुंदाचार्य कृत पचास्तिकाय प्रवचनसार आदि की गाथाओंके और उनके अभिप्रायोंको संग्रह किया गया है, इसीतरह

श्वेतांबराचार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने ' द्रव्यगुणप-र्याय रासा ' [गुजराती] में देवसेनके नयचक्रका कई जगह उल्लेख किया है और उक्त रासेके आधारसे ही लिखे हुए द्रव्यानुयोगतर्कणा नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद किया है। एक उल्लेख इस प्रकार है:—

नयाश्चोपनयाश्चैते तथा मूलनयावपि।
इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥८॥

एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव हि मूलनयावपि निश्चयेनेत्थममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेऽपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता कर्त्रा देवेन समादिष्टं कथितं । एतावता दिगम्बरमतानुसारनयचक्रग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिकं सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतन्त्रमेवास्ते न किमपि विसंवादितयास्तीति * । ''

उक्त ' तर्कणा ' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह विल्कुल ' नयचक्र ' का अनुवाद है और इसे स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भोजसागरने स्वीकार किया है । इससे निश्चय हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता भोजसागर इसी नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ समझते थे।

---

* देखो रायचन्द्रशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ' द्रव्यानुयोगतर्कणा ' अध्याय ८ श्लोक ८ पृष्ठ ११५ ।

तेसिं पायपंसाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि ' दव्वसहावपयास ' नामका एक ग्रन्थ था जो दोहा छन्दोंमें बनाया हुआ था। उसीको माइल्ल धवलने गाथाओंमें रचा।

दूसरी गाथा बहुत कुछ अस्पष्ट है; फिर भी उसका अभिप्राय लगभग यह है कि श्रीदेवसेन योगीके चरणोंके प्रसादसे यह ग्रंथ बनाया गया।

यह गाथा बम्बईकी प्रतिमें नहीं है, मोरेनाकी प्रतिमें है। बम्बईकी प्रतिमें इसके बदले ' दुसमीरणेण पोय पेरियसंतं ' आदि गाथा है जो ऊपर एक जगह उद्धृत की जा चुकी है और जिसमें यह बतलाया गया है कि देवसेनमुनिने पुराने नष्ट हुए नयचक्रको फिरसे बनाया।

मोरेनावाली प्रतिकी गाथा यदि ठीक है तो उससे केवल यही मालूम होता है कि माइल्ल धवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकटका गुरुसंबंध होगा। बम्बईवाली प्रतिकी गाथा माइल्ल धवलसे कोई संबंध नहीं रखती है—वह नयचक्र और देवसेनसूरिकी प्रशंसावाचक अन्य तीन चार गाथाओंके समान एक जुदी ही प्रशस्ति गाथा है।

नीचे लिखी गाथामें कहा है कि दोहा छंदमें रचे हुए द्रव्यस्वभाव प्रकाशको सुनकर सुहंकर या शुभंकर नामके कोई सज्जन जो संभवतः माइल्ल धवलके मित्र होंगे हंसकर बोले कि दोहाओंमें यह अच्छा नहीं लगता; इसे गाथाबद्ध कर दो.—

भग पूरे नयचक्रको भी इसमें शामिल कर लिया गया है; यहाँतक कि मंगलाचरण की और अंतकी नयचक्रकी प्रशंसा-सूचक गाथायें भी नहीं छोड़ी हैं! जान पड़ता है कि नय-चक्रकी उक्त प्रशंसासूचक गाथाओंके कारण ही लोगोंको भ्रम हो गया है और वे इसे 'बृहत् नयचक्र' कहने लगे हैं।

इसके प्रारंभकी उत्थानिकामें लिखा है— " श्रीकुंदकुंदाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय द्रव्यस्वभावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् गाथाकर्ता (१)....इष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह—।" यहाँ द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्रका विशेषण है। संग्रहकर्ताका इससे यह अभिप्राय भी हो सकता है कि यह नयचक्रयुक्त द्रव्यस्वभावप्रकाशक ग्रंथ है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि इस 'द्रव्यस्वभावप्रकाश' के कर्ता कौन हैं।

> दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं।
> तं गाहाबंधेण य रइयं माइल्लधवलेण॥
> दुसमीरपोयमि(नि)वाय पा(या)णा(णं) सिरिदेवसे-
> णजोईणं।

---

१ बम्बईवाली प्राचीन प्रतिमें यहाँ गाथाकर्ता ही पाठ है, जब कि [illegible] है। वास्तवमें गाथा कर्ता ही होना चाहिए यही [illegible] होना भी चाहिए था।

लिये गुरु आदि शब्दोंका प्रयोग न करते और न यही कहते कि तुम उन देवसेनको और उनके नयचक्रको नमस्कार करो।

इन सब बातोंसे सिद्ध है कि छोटे नयचक्रके कर्ता देवसेन हैं और माइल्लधवल उन्हींको लक्ष्य करके उक्त प्रशंसा करते हैं। माइल्लधवलने देवसेनसूरिके पूरे नयचक्रको अपने इस ग्रन्थमें अन्तर्गर्भित करलिया है। ऐसी दशामें उनका इतना गुणगान करना आवश्यक भी हो गया है।

माइल्लधवलने इसके सिवाय और कोई ग्रंथ भी बनाये हैं या नहीं और ये कब कहां हुए हैं, इसका हम कोई पता नहीं लगा सके। आश्चर्य नहीं जो वे देवसेनके ही शिष्योंमें हों, जैसाकि मोरेनाकी प्रतिकी अंतिम गाथासे और देवसेनके श्रेष्ठ गुरु शब्दका प्रयोग देखनेसे जान पड़ता है।

देवसेनसूरि।

नयचक्रके संबंधमें इतनी आलोचना करके अब हम संक्षेपमें इसके कर्ता देवसेनसूरिका परिचय देना चाहते हैं। इनका बनाया हुआ एक भावसंग्रह नामका ग्रन्थ है। उसमें वे अपने विषयमें इस प्रकार कहते हैंः—

सिरिविमलसेण(१) गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति।

१—श्रीविमलसेनगणधरशिष्यः नाम्ना देवसेन इति।
अबुधजनबोधनार्थं तेनेदं विरचितं सूत्र॥

मुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणइ ॥

इससे भी यही मालूम होता है कि 'दव्वसहावपयास' पहले दोहाबद्ध था और उसे माइल्ल धवलने गाथाबद्ध किया। माइल्ल धवल गाथा कर्ता ही हैं, इसका खुलासा इस ग्रन्थकी उत्थानिकासे भी हो जाता है जहां लिखा है कि गाथाकर्ता (ग्रन्थ कर्ता नहीं) इष्ट देवताको नमस्कार करते हुए कहते हैं।

नीचे लिखी गाथाओंसे भी यह प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ के कर्ता देवसेनसूरि नहीं किंतु माइल्ल धवल हैं:—

दारियदुण्णयदणुयं परअप्पपरिक्खतिक्खखरधारं।
सव्वण्हुविण्हुचिण्हं सुदंसणं णमह णयचक्कं ॥
सुयकेवलीहिं कहियं सुअसमुद्दअमुदमयमाणं।
बहुभंगभंगुराविय विराजियं णमह णयचक्कं ॥
सियसद्दसुणयदुण्णयदणुदेहविदारणेक्कवरवीरं।
तं देवसेणदेवं णयचक्कयरं गुरुं णमह ॥

इनमेंसे पहली दो गाथाओंमें नयचक्रकी प्रशंसा करके कहा है कि ऐसे [illegible] गुरु नयचक्रको नमस्कार करो और [illegible] गाथामें कहा है कि दुर्नयरूपी राक्षसको विदारण करने [illegible] [illegible] गुरु देवसेनको जो नयचक्रके कर्ता हैं—नमस्कार करो। यदि इस ग्रन्थके कर्ता स्वयं देवसेन होते तो वे अपने

किसी ग्रन्थमें उन्होंने ग्रंथ रचनाका समय नहीं दिया है।

यद्यपि इनके किसी ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख नहीं है कि वे किस संघके आचार्य थे; परन्तु दर्शनसारके पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघके आचार्य थे। दर्शनसारमें उन्होंने काष्ठासंघ, द्राविडसंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बरसंघोंकी उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्याती कहा है परन्तु मूलसंघके विषयमें कुछ नहीं कहा है। अर्थात् उनके विश्वासके अनुसार यही मूलसे चला आया हुआ असली संघ है।

दर्शनसारकी ४३ वी गाथामें [१] लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामीद्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नाय में थे।

भावसंग्रह (२) (प्राकृत) में जगह जगह दर्शसारकी अनेक गाथा उद्धृत की गई हैं और उनका उपयोग उन्होंने स्वनिर्मित गाथाओंकी भांति किया है। इससे इस विषयमें कोई संदेह नहीं र-

---

१ जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण। ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

२ भावसंग्रह ' माणिकचंद ग्रंथमाला ' में शीघ्र ही छपनेवाला है। प्रेसमें दिया जा चुका है।

अंतुहइजणयोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरुका नाम श्रीविमलसेन गणधर [गणी] था। दर्शनसार नामक ग्रन्थके अंतमें वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं:—

पुव्वायरियकयाइं [१] गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥४९॥
रइओ [२] दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥५०॥

अर्थात् पूर्वाचार्योंकी रची हुई गाथाओंको एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणिने धारा नगरीमें निवास करते हुए पार्श्वनाथके मंदिरमें माघ सुदी दशवीं विक्रम [३] संवत् ९९० को यह दर्शनसार नामक ग्रन्थ रचा। इससे निश्चय हो जाता है कि इनका अस्तित्व काल विक्रमकी दशवीं शताब्दि है। अपने अन्य

१—पूर्वाचार्यकृता गाथाः सञ्चयित्वा एकत्र।
श्रीदेवसेनगणिना धारायां संवसता ॥४९॥
२—रचितो दर्शनसारो हारो भव्यानां नवशते नवतौ।
श्रीपार्श्वनाथगेहे सुविशुद्धे माघशुद्धदशम्याम् ॥५०॥
३—दर्शनसारकी अन्य गाथाओंमें जहां जहां संवत्‌का उल्लेख किया है, वहां वहां 'विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स' पद देकर विक्रम संवत ही प्रकट किया है। इसके सिवाय धारा (मालवा) में विक्रम संवत ही प्रचलित रहा है।

होता कि दर्शनसार और भावसंग्रह दोनोंके कर्ता एक ही देवसेन हैं।

इनके सिवाय आराधनासार (१) और तत्त्वसार [२] नामके ग्रन्थ भी इन्हीं देवसेनके बनाये हुए हैं।

पं. शिवजीलालने इनके 'धर्मसंग्रह' नामके एक और ग्रंथका उल्लेख किया है; परंतु वह अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया है।

मुद्रण।

[illegible] स्वर्गीय पंडित गोपालदासजीने चार पाँच वर्ष पहले इस ग्रंथके प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने अपने शिष्य पं. वंशीधरजीसे इसकी [द्रव्यसंग्रह प्रकाशकी) एक प्रेस कापी भी संस्कृत छायासहित तैयार करके भेज दी थी, परंतु उसमें जगह जगह पाठ छूटे हुए थे और अनेक स्थल सन्देहास्पद भी थे। इसलिए जबतक दूसरी शुद्ध प्रति प्राप्त न हो गई, तब तक यह न छप सका। इसके बाद इसकी कुछ प्रतियाँ मिल गईं और अब उनकी सहायतासे मुद्रित करके प्रकाशित किया जाता है। नीचे लिखी प्रतियोंसे इसका संशोधन हुआ है —

१ [illegible] ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुआ है।

२ मा. ग्रं० मालाके १३ वें अंकमें यह छप चुका है।

१ मोरेनाकी पूज्यपाद पं. गोपालदासजीकी कराई हुई कापी पर से।

२ स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचंदजीके चौपाटी दि. मंदिर की नयचक्र और द्रव्यस्वभाव प्रकाशकी प्रतियों परसे। ये दोनों प्रतियां एक ही लेखकके हातकी लिखी हुई हैं और लगभग ४०० वर्ष पहले की हैं। प्रायः शुद्ध हैं।

३ शोलापूरके सरस्वती भण्डारकी एक प्रतिपरसे जो संवत १९३५ की लिखी हुई है और शुद्ध है।

एक बार इसकी प्रेसकापी पं० इन्द्रलालजी साहित्य शास्त्री जयपुरके पास भेजी गई थी और उन्होंने उसका कुछ भाग वहाँके किसी सरस्वती भण्डारकी प्रतिपरसे शुद्ध कर दिया था।

आलापपद्धतिका मुद्रण, निर्णयसागरमें श्री० पं० पन्नालालजी बाकलीवालके प्रयत्नसे छपी हुई प्रतिपरसे कराया गया है।

इस ग्रन्थका सम्पादन और संशोधन श्रीयुक्त पं० वंशीधरजी शास्त्री न्यायतीर्थने किया है। और उन्हींके श्रीधर प्रेसमें यह मुद्रित हुआ है।

पूनाः—
द्वितीय श्रावण बदी २
सं० १९७७ वि०

निवेदक—नाथूराम प्रेमी
मंत्री.

मूलसूत्राणामकाराद्यनुक्रमसूची.

अ.

ण.





॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीदेवसेनविरचितं

लघु नयचक्रम्॥



वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं ।
पणविवि वीरजिणिंदं पच्छा णयलक्खणं वोच्छं ॥१॥

वीरं विषयविरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं पश्चान्नयलक्षणं वक्ष्ये ॥ १ ॥

जं णाणीण वियप्पं सुयभेयं वत्थुअंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥ २ ॥

यो ज्ञानिनां विकल्पः श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ॥
स इह नयः प्रोक्तः ज्ञानी पुनस्तैर्ज्ञानैः ॥ १ ॥

जह्मा ण णएण विणा होइ णरस्स सियवायपडिवत्ती।
तह्मा सो बोहव्वो एअंतं हंतुकामेण ॥ ३ ॥

यस्मान्न नयेन विना भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः ॥
तस्मात्स बोद्धव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥ ३ ॥

जह सद्धाणंमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलये।

सब्भूयमसब्भूयं उवयरियं चेव दुविह सब्भूयं ।
तिविहं पि असब्भूयं उवयरियं जाण तिविहं पि ॥
सद्भूतमसद्भूतमुपचरितं चेव द्विविधं सद्भूतं ।
त्रिविधमप्यसद्भूतमुपचरितं जानीहि त्रिविधमपि ॥१५॥

दव्वत्थिए य दव्वं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं ।
सब्भूयासब्भूए उवयरिए च दुणवतियत्था ॥१६॥
द्रव्यार्थिके च द्रव्यं पर्यायः पर्यायार्थिके विषयः ।
सद्भूतासद्भूते उपचरिते च द्विनवत्रिकार्थाः ॥१६॥

पज्जय गउणं किच्चा दव्वं पिय जो हु गिह्णए लोए
सो दव्वत्थो भणिओ विवरीओ पज्जयत्थो दु ॥१७
पर्याय गौणं कृत्वा द्रव्यमपि च यो हि गृह्णाति लोके ।
स द्रव्यार्थो भणितः विपरीतः पर्यायार्थस्तु ॥१७॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं ।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो ॥१८
कर्मणां मध्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशम् ।
भण्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥१८॥

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

उप्पादवयं गौणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥१९॥
उत्पादव्यय गौणं कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम् ।

ते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ॥१९॥

भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः ।

गुणिपाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं ।
। सो दव्वत्थो भेदावियप्पेण णिरवेक्खो ॥२०॥

गुणादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेदम् ।
द्रव्यार्थो भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥२०॥

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

गु रायपादी सव्वे जीवंमि जो दु जंपेदि ।
ई अशुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥२१॥

तन् च रागादीन् सर्वेषु जीवेषु यस्तु जल्पति ।
खलु अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥२१॥

उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

ादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं ।
म्स एयसमये जो दु असुद्धो हवे विदिओ ॥२२॥

उत्पादव्ययविमिश्रां सत्तां गृहीत्वा भणति त्रितयत्वम् ।
ैकसमये यो ह्यशुद्धो भवेद्द्वितीयः ॥२२॥

भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः ।

' सदि संबंधं गुणगुणियाईण कुणइ जो दव्वे ।
वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥२३॥

सति सम्बन्धं गुणगुण्यादीनां करोति यो द्रव्ये ।
पशुद्धो दृष्टः सहितः स भेदकल्पना ॥ २३ ॥

इदमेवमुच्चरता भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥ २८ ॥
पर्मशयाद्याताऽपिनाशी यो हि कारणभावे ।
इदमेवमुच्चरन्भण्यते स सादिनित्यनयः ॥ २८ ॥

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकः स्वभावानित्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिण्हए जो हु ।
सो दु सहाव अणिच्चो भण्णइ खलु सुद्धपज्जायो ॥ २
सत्ताऽमुख्यरूपे उत्पादव्ययौ हि गृह्णाति यो हि ।
स तु स्वभावानित्यो भण्यते खलु शुद्धपर्यायः ॥ २९ ॥

सत्तासापेक्षः स्वभावानित्यः अशुद्धः पर्यायार्थिकः ।

जो गहइ एकसमए उप्पायवयद्धुवत्तसंजुत्तं ।
सो सब्भाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थीओ ॥३०
यो गृह्णाति एकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।
स सद्भावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकः ॥ ३० ॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षः स्वभावानित्यः शुद्धः पर्यायार्थिकः ।

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था ।
जो इह अणिच्च सुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ॥३१
देहिनां पर्यायाः शुद्धाः सिद्धानां भणति सदृशाः ।
य इहानित्यः शुद्धः पर्ययग्राही भवेत्स नयः ॥ ३१ ॥

कर्मोपाधिसापेक्षो विभावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थनयः ।

भणइ अणिच्चाऽसुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु ।

होइ विमाए अणिस्सो अणुद्धजो पज्जयाहिवसजोऽ॥.
भवत्यनिरस्याशुद्धोऽथ पूर्वापरवर्तनी पर्यायाच्चो हि ।
भवति विमानिनोऽशुद्धार्थरसोऽर्थितो नयः ॥ ३२ ॥

भूतमाविवर्तमानकालभेदात्मैगमस्त्रिधा ।

णिव्विणदव्वकिरिया वट्टणकाले दु जं समाचरणं ।
तं भूयणइगमणयं जह अज्ज णिव्वुइदिणं वीरे ॥३३॥
निर्वृत्तद्रव्यक्रिया वर्तने काले तु यत्समाचरणम् ।
स भूतनैगमनयो यथा अद्य निर्वृतिदिनं वीरस्य ॥ ३३ ॥
पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा
लोए य पुच्छमाणे तं भण्णइ वट्टमाणणयं ॥ ३४ ॥
प्रारब्धा या क्रिया पचनविधानादिः कथयति यः सिद्धाम् ।
लोके च पृच्छ्यमाने स भण्यते वर्तमाननयः ॥ ३४ ॥
णिप्पण्णमिव पयंपदि भाविपयत्थं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भावि णइगमोत्ति णओ॥३५
निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थं भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥३५॥

सामान्यसंग्रहो विशेषसंग्रहश्चेति संग्रहो द्वेधा ।

अवरे परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणो ।
होइ तमेव असुद्धो इगजाइविसेसगहणेण ॥ ३६ ॥
अपरे परमविरोधे सर्वं अस्ति इति शुद्धसंग्रहणं ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषग्रहणेन ॥ ३७ ॥

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो विशेषसंग्रहभेदकोऽपि व्यव-
हारोऽपि द्वेधा—

जं संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा ।
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ॥३७॥

यं संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थं अशुद्धं शुद्धं वा ।
स व्यवहारो द्विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकर ॥३७॥

ऋजुसूत्रं स्थूलर्जुसूत्रभेदर्जुसूत्राभ्यांपि द्विविध ।

जो एयसमयवट्टी गेण्हइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं पि सद्दं जहा खणियं ॥३८॥

य एकसमयवर्तिनं गृह्णाति द्रव्ये ध्रुवत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्र सूक्ष्मः सर्वमपि सद्यथा क्षणिकम् ॥३८॥

मणुयाइयपज्जाओ मणुसु त्ति सगट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥३९॥

मनुजादिकपर्यायो मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमान ।
यो भणति तावत्कालं स स्थूलो भवति ऋजुसूत्र. ॥३९॥

शब्दसमभिरूढैवंभूताश्चैके त्रयो नयभेदा. ।

जो वट्टणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिङ्गमाईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुस्साइयाण जहा ॥४०॥

यो वर्तनं न मन्यते एकार्थे भिन्नलिङ्गादीनाम् ।
स शब्दनयो भणित ज्ञेयः पुष्यादीनां यथा ॥४०॥

अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं ।
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जह देवो ॥४१॥

अथवा सिद्धे शब्दे करोति यः किमपि अर्थव्यवहरणम् ।
स खलु शब्दस्य विषयः देवशब्देन यथा देवः ॥४१॥

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्के ॥४२॥
शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुनः शब्दः ।
भणति इह समभिरूढो यथा इन्द्रः पुरंदरः शक्रे ॥४२॥

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचिट्ठाहिं ।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूओ हवे स णओ ॥४३॥
यद्यत्कुरुते कर्म देही मनोवचनकायचेष्टातः ।
तत्तत्खलु नामयुक्त एवंभूतो भवेत्स नयः ॥४३॥

पढमतिया दव्वत्थी पज्जयगाही य इयर जे भणिय
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥४४
प्रथमत्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायग्राहिणश्चेतरे ये भणिता. ।
ते चत्वारोऽर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥४४॥

पण्णवणभाविभूदे अत्थे जो सो हु भेयपज्जाओ ।
अह तं एवंभूदो संभवदो मुणह अत्थेसु ॥४५॥
प्रज्ञापन भाविभूतेऽर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।
अथ स एवंभूतः संभवतो मन्यध्वं अर्थेषु ॥४५॥

उपनयभेदाः कथ्यन्ते ।

गुणगुणिपज्जयदव्वे कारयसब्भावदो य दव्वेसु ।
सण्णाईहि य भेयं कुणइ सब्भूयसुद्धियरो ॥४६॥
गुणगुणिपर्ययद्रव्ये कारकसद्भावतश्च द्रव्येषु ।

संज्ञादिभिश्च भेद करोति सद्भूतशुद्धिकरः ॥४६॥

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य एक्केण ।
अण्णेण य णिच्छयदो भणिया का तत्थ खलु हवे जुत्ती ॥४७॥

द्रव्याणां खलु प्रदेशा बहुधा व्यवहारतश्च एकेनाम ।
अन्येन च निश्चयतो भणिता. का तत्र खलु भवेद्युक्तिः ॥

तदुच्यते ।

व्यवहाराश्रयात्स्यात् संख्यातीतप्रदेशवान् ।
अभिन्नात्मैकदेशित्वादेकदेशोऽपि निश्चयात् ॥१॥

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥४८॥

अणुगुरुदेहप्रमाण. उपसंहारप्रसर्पत चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतोऽसंख्यदेशो वा ॥४८॥

एयपदेसे दव्वं णिच्छयदो भेयकप्पणारहिदो ।
सब्भूएणं बहुगा तस्स य से भेयकप्पणासहिए ॥४९॥

शुद्धसद्भूतव्यवहारोऽशुद्धसद्भूतव्यवहारः इति सद्भूतोऽपि द्विधा
स्वजातीयासद्भूतव्यवहारो विजातीयासद्भूतव्यवहारः स्वजातीय
विजातीयासद्भूतव्यवहार इति असद्भूतोऽपि त्रिधा ।

अण्णेसिं अण्णगुणो भणइ असब्भूय तिविहभेदेवि ।
सज्जाइइयरमिस्सो णायव्वो तिविहभेदजुदो ॥५०॥

अन्येषामन्यगुणा भणति असद्भूतस्त्रिविधभेदेऽपि ।

सजातीय इत्यमी मिश्रो ह्यसद्भूतस्त्रिभिर्भेदैर्युतः ॥५०॥

[illegible] ।

दव्वगुणपज्जयाणं उवयार होइ ताण तत्थेव ।
दव्वे गुणपज्जया गुणे दवियपज्जया णेया ॥५१॥

द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारो भवति तेषां तत्रैव ।
द्रव्ये गुणपर्यायौ गुणे द्रव्यपर्याया ज्ञेयाः ॥५१॥

पज्जाये दव्वगुणा उवयरियव्वा हु बंधसंजुत्ता ।
संबंधे संसिलेसे णाणीणं णेयमादीहिं ॥५२॥

पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितव्या हि बन्धसंयुक्ताः ।
संबन्धे संश्लेषे ज्ञानिनां नैगमादिभिः ॥५२॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः ।

एइंदियादिदेहा णिच्चिता जेवि पोग्गले काये ।
ते जो भणेइ जीवो ववहारो सो विजातीओ ॥ ५३ ॥

एकेन्द्रियादिदेहा निश्चिता येऽपि पौद्गले काये ।
ते ये भणिता जीवा व्यवहारः स विजातीयः ॥ ५३ ॥

विजातीयगुणे विजातीयगुणारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः—

मुत्तं इह मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जण्णियं जह्मा ।
जइ णहु मुत्तं णाणं ता कह खलियं हि मुत्तेण ॥५४॥

मूर्तमिह मतिज्ञानं मूर्तिकद्रव्येण जनितं यस्मात् ।
यदि नहि मूर्तं ज्ञानं तत्कथं स्खलितं हि मूर्तेन ॥ ५४ ॥

स्वजातीयपर्याये स्वजातीयपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः।

दट्ठूणं पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ।
सज्जाइअसब्भूओ उवयरिओ णियजातिपज्जाओ ॥५६॥

दृष्ट्वा प्रतिबिम्बं भवति हि स चैव एव पर्यायः।
स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिपर्यायः ॥५६॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः।

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं खु तस्स विसयादो।
जो भणइ एरिसत्थं ववहारो सो असब्भूदो ॥५७॥

ज्ञेयं जीवमजीवं तदपि च ज्ञानं खलु तस्य विषयात्।
यो भणति ईदृशार्थं व्यवहारः सोऽसद्भूत. ॥५७॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयविभावपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः-

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी पयंपदे जो दु।
सो ववहारो णेओ दव्वे पज्जायउवयारो ॥५८॥

परमाणुरेकदेशी बहुप्रदेशी प्रकथयति यस्तु।
स व्यवहारो ज्ञेयः द्रव्ये पर्यायोपचारः ॥५८॥

स्वजातिगुणे स्वजातिद्रव्यारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः-

रूवं पि भणइ दव्वं ववहारो अण्णअत्थसंभूदो।
सेओ जह पासाणो गुणेसु दव्वाण उवयारो ॥५९॥

रूपमपि भणति द्रव्यं व्यवहारोऽन्यार्थसंभूतः।

भेदो वा [illegible] गुणेषु [illegible] ॥५९॥

स्वजातिगुणे स्वजाति पर्यायोपचारमाह—

णाणं पि हि पज्जायं परिणममाणं तु गिह्णए जम्हा ।
ववहारो खलु जंपइ गुणेसु उवयरियपज्जाओ ॥६०॥

ज्ञानमपि हि पर्यायं परिणममानं तु गृह्णाति यस्मात् ।
व्यवहारः खलु जल्पति गुणेषूपचरितपर्यायः ॥६०॥

स्वजातिविभावपर्याये स्वजातिद्रव्योपचारासद्भूतव्यवहारः—

दट्ठूण थूलखंधं पुग्गलदव्वं त्ति जंपए लोए ।
उवयारो पज्जाए पोग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥६१॥

दृष्ट्वा स्थूलस्कन्धं पुद्गलद्रव्यमिति जल्पति लोके ।
उपचारः पर्याये पुद्गलद्रव्यस्य भणति व्यवहारः ॥६१॥

स्वजातीयपर्याये स्वजातीयगुणारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः ।

दट्ठूण देहठाणं वण्णंतो होइ उत्तम रूवं ।
गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥६२॥

दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमानं भवति उत्तम रूपं ।
गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति संदेहः ॥६२॥

सद्दत्थपच्चयादो संतो भणिदो जिणेहि ववहारो ।
जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दुह्णं पि तस्स कुदो ॥६३॥

शब्दार्थप्रत्ययतः सतो भणितो जिनैर्व्यवहारः ।
यस्य न भवेत्सत् हेतु द्वयोरपि तस्य कुतः ॥६३॥

चउगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुहं कम्मं ।
जइ तं मिच्छा तो किह समारो संखामिव तस्समये
॥६४॥

चतुर्गतिरिह संसारस्तस्य च हेतु. शुभाशुभ कर्म ।
यदि तन्मिथ्या तर्हि कथ ससारः सांख्य इव तत्समये ॥६४॥

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो दु जिणदिट्ठा ।
हिंसादिसु जदि पावं सव्वत्थो किं ण ववहारो ॥६५॥

एकेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतस्तु जिनदृष्टा ।
हिंसादिषु यदि पाप सर्वत्र किं न व्यवहार ॥६५॥

बंध वि मुक्खहेऊ अण्णो ववहारदो य णायव्वो ।
णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु सव्वदरसीहिं ॥६६॥

बन्धेऽपि मुक्यहेतुरन्यो व्यवहारतश्च ज्ञातव्य ।
निश्चयत पुनर्जीवो भणितः खलु सर्वदर्शिभि ॥६६॥

जो चेव जीवभावो णिच्छयदो होइ सव्वजीवाणं ।
सो चिय भेदुवयारा जाण फुडं होइ ववहारो ॥६७॥

यश्चैव जीवभाव निश्चयतो भवति सर्वजीवानाम् ।
स एव भेदोपचारात्स्फुट भवति व्यवहारः ॥६७॥

भेदुवयारो णियमा मिच्छादिट्ठीण मिच्छरूवं खु ।
सम्मे सम्मो भणिओ तेहि दु बंधो व मुक्खो वा ॥६८॥

भेदोपचारो नियमान्मिथ्यादृष्टीनां मिथ्यारूपः खलु ।
सम्यक्त्वे सम्यक् भणितः तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥६८॥

ण मुणइ वत्थुसहावं अह विवरीयं खु मुणइ णिरवेक्खं
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु ॥६९॥
न मिनोति वस्तुस्वभावं अथ विपरीतं खलु मिनोति निरपेक्षं
तदिह मिथ्याज्ञानं विपरीतं सम्यग्रूपं तु ॥६९॥

णो उवयारं कीरइ णाणस्स हु दंसणस्स वा णेए।
किह णिच्छियणाणं अण्णेसिं होइ णियमेण ॥७०॥
नो उपचारं क्रियते ज्ञानस्य हि दर्शनस्य वा ज्ञेये।
कथं निश्चितज्ञानमन्येषां भवति नियमेन ॥७०॥

इति असद्भूतव्यवहारः।

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु।
सज्जाइइयरमिस्सो उवयरिओ कुणइ ववहारो ॥७१॥
उपचारादुपचारं सत्यासत्येषु उभयार्थेषु।
सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करोति व्यवहारः ॥७१॥

स्वजातीयोपचरितासद्भूतव्यवहारो विजातीयोपचरितासद्भूतव्यवहारः स्वजातीयविजातीयोपचरितासद्भूतव्यवहारः
इति उपचरितासद्भूतोऽपि त्रेधा।

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जंपंतो।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥७२॥
देशपतिः देशस्थः अर्थवणिजः तथैव जल्पन्।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् ॥७२॥

स्वजातीयद्रव्ये स्वजातीयद्रव्यारोपणमुपचरितासद्भूतव्यवहारः -

पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपयाइ जंपंतो ।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥ ७३ ॥

पुत्रादिबन्धुवर्गं अहं च मम सम्पदादि जल्पन् ।
उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥ ७३ ॥

विजातीयद्रव्ये विजातीयद्रव्यारोपणं उपचरितासद्भूतव्यवहारः—

आहरणहेमरयणं वत्थादीया ममाणि जंपंतो ।
उवयारअसब्भूओ विजाइदव्वेसु णायव्वो ॥ ७४ ॥

आभरणहेमरत्नानि वस्त्रादीनि ममेति जल्पन् ।
उपचारासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥ ७४ ॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिद्रव्यारोपणं उपचरितासद्भूतव्यवहारः—

देसं च रज्ज दुग्गं एवं जो चेव भणइ मम सव्वं ।
उहयत्थे उवयरिओ होइ असब्भूयववहारो ॥ ७५ ॥

देशश्च राज्यं दुर्गं एवं यश्चैव भणति मम सर्वम् ।
उभयार्थे उपचरितो भवत्यसद्भूतव्यवहारः ॥ ७५ ॥

एयंते णिरवेक्खे णो सिज्झइ विविहभावगं दव्वं ।
तं तह वयणेयंते इदि बुज्झह सियअणेयंतं ॥ ७६ ॥

एकान्ते निरपेक्षे नो सिद्ध्यति विविधभावगं द्रव्यम् ।
तत्तथा वचनेऽनेकान्ते इति बुध्यत स्यादनेकान्तम् ॥ ७६ ॥

ववहारादो बंधो मोक्खो जम्हा सहावसंजुत्तो।
तम्हा कुरु तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥७७॥
व्यवहाराद् बन्धो मोक्षो यस्मात्स्वभावसंयुक्तः।
तस्मात्कुरु तं गौणं स्वभावमाराधनाकाले ॥७७॥

जह रससिद्धो वाई हेमं काऊण भुंजये भोगं।
तह णय सिद्धो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरयं ॥७८॥
यथा रससिद्धो वैद्यो हेम कृत्वा भुनक्ति भोगम्।
तथा नयसिद्धो योगी आत्मानमनुभवत्वनवरतम् ॥७८॥

सोक्खं च परमसोक्खं जीवे चारित्तसंजुदे दिट्ठं।
वट्टइ तं जइवग्गे अणवरयं भावणालीणे ॥७९॥
सौख्यं च परमसौख्यं जीवे चारित्रसंयुते दृष्टम्।
वर्तते तद्यतिवर्गे अनवरतं भावनालीने ॥७९॥

विभावस्वभावाभावत्वेन भावना-

रायाइभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जम्हा।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८०॥
रागादिभावकर्माणि मम स्वभावा न कर्मजा यस्मात्।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८०॥

सामान्यगुणप्रधानत्वेन भावना-

परभावादो सुण्णो संपुण्णो जो हु होइ णियभावे।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८१॥
परभावतः शून्यः संपूर्णो यो हि भवति निजभावे।
संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवाम्यात्मा ॥८१॥

विपक्षद्रव्यप्रमादाभावत्वेन भावना—

जडसब्भावो णहु मे जह्मा तं णत्थि भिण्णजडदव्वं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८२॥
जडस्वभावो न मे यस्मात्तन्नास्ति भिन्नजडद्रव्यं ।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवेदात्मा ॥८२॥

विशेषगुणप्रधानत्वेन भावना—

मज्झ सहावं णाणं दंसण चरणं न किंपि आवरणं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८३॥
मम स्वभावः ज्ञान दर्शन चरणं न किमपि आवरणम् ।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवेदात्मा ॥८३॥

स्वरूपभावप्रधानत्वेन भावना—

भावचउक्कं चत्तं संपत्तो परमभावसब्भावं ।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥८४॥
भावचतुष्कं त्यक्त्वा सम्प्राप्तः परमभावसद्भावम् ।
यः संवेदनग्राही सोऽहं ज्ञाता भवेदात्मा ॥८४॥

णियपरमणाणसंजणिय जोगिणो चारुवेयणाणंदं ।
जइया तइया कीलइ अप्पा अवियप्पभावेण ॥८५॥
निजपरमज्ञानसंजनितं योगिनः चारुचेतनानन्दम् ।
यदा तदा आक्रीडति आत्मा अविकल्पभावेन ॥८५॥

लवणं व एस भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं ।
सम्माविसुयं मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं ॥८६॥
लवणमिव एतद्भणितं नयचक्रं सकलशास्त्रशुद्धिकरम् ।

[illegible]

जइ इच्छह उत्तरिदुं अण्णाणमहोदहिं सुलीलाए।
तो णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तंडे॥
यदि इच्छत उत्तरितुं अज्ञानमहोदधिं सुलीलया।
तर्हि ज्ञातुं कुरुत मतिं नयचक्रे दुर्नयतिमिरमार्तण्डे॥

॥ इति लघुनयचक्रं देवसेनकृतं समाप्तम्॥



॥ ॐ ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय स्वभावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् ग्रन्थकर्ता निर्विघ्न शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं शिष्टाचारप्रतिपादनं पुण्यावाप्ति नास्तिकतापरिहारं फलमभिलषन् शास्त्रादौ इष्टदेवताविशेषं नमस्करोति 'दव्वे' ति.

दव्वा विस्ससहावा लोयायासे सुसंठिया जेहिं ।
दिट्ठा तियालविसया वंदेहं ते जिणे सिद्धे ॥ १ ॥

द्रव्याणि विश्वस्वभावानि लोकाकाशे सुस्थितानि यैः ।
दृष्टानि त्रिकालविषयाणि वन्देऽहं तान् जिनान्सिद्धान् ॥

इष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य व्याख्येयप्रतिज्ञानिर्देशार्थमाह 'जं जीति'—

जं जं जिणेहिं दिट्ठं जह दिट्ठं सव्वदव्वसब्भावं ।
पुव्वावराविरुद्धं त तह संखेवदो वोच्छं ॥ २ ॥

यो यो जिनैर्दृष्टो यथा दृष्टः सर्वद्रव्यस्वभावः ।
पूर्वापराविरुद्धः तथा संक्षेपतो वक्ष्ये ॥

स्वभावस्वभाविनोरेकत्वनिर्णीत्युपचारं व्याचष्टे 'जीवेति'

जीवा पुग्गलकाला धम्माधम्मा तहेव आयासं ।
णियणियसहावजुत्ता दव्वा णयरमाणेहिं ॥ ३ ॥

जीवाः पुद्गलकालौ धर्माधर्मौ तथैवाकाशम् ।
निजनिजस्वभावयुक्ता द्रव्याणि नयप्रमाणैः ॥

स्वभावस्य नामान्तरं ब्रूते 'तच्चमित्यादि'—

तच्चं तह परमट्ठं दव्वसहावं तहेव परमपरं ।

धेयं सुद्धं परमं एयट्ठा हुंति अभिहाणा ॥ ४ ॥
तत्त्वं तथा परमार्थं द्रव्यस्वभावस्तथैव परमपरम् ।
ध्येयं शुद्धं परमं एकार्थानि भवन्त्यभिधानानि ॥

स्वभावस्वभाविनोऽर्थानि दर्शयति—

एदेहिं तिविहलोगं णिप्पण्णं खलु णहेण तमलोयं
तेणेदे परमट्ठा भणिया सब्भावदरसीहिं ॥ ५ ॥
ते पुण कारणभूदा लोयं कज्जं वियाण णिच्छयदो
अण्णो कोवि ण भणिओ तेसिं इह कारणं कज्जं ॥
एतैस्त्रिविधो लोको निष्पन्नः खलु नभसा स अलोकः ।
तेनैते परमार्था भणिताः स्वभावदर्शिभिः ॥
ते पुनः कारणभूता लोकं कार्यं विजानीहि निश्चयतः ।
अन्यः कोऽपि न भणितस्तेषामिह कारणं कार्यम् ॥

एकक्षेत्रनिवासित्वेन संकरादिदोषपरिहारमाह—

अवरोप्परं विमिस्सा तह अण्णोण्णावगासदो णिच्चं ।
संतो वि एयखेत्ते ण परसहावेहिं गच्छंति ॥ ७ ॥
परस्परं विमिश्रास्तथान्योन्यावकाशतो नित्यम् ।
सन्तोऽप्येकक्षेत्रे न परस्वभावैर्गच्छन्ति ॥

इति पीठिकानिर्देशः ।

अथ सम्या विशेषव्याख्यानार्थमधिकारारम्भ —

गुणपज्जाया दवियं काया पंचत्थि सत्त तच्चाणि ।
अण्णेवि णव पयत्था पमाण णय तह य णिक्खेवं ॥८॥
दंसणणाणचरित्ता कमसो उवयारभेददइदेहिं ।
दव्वसहावपयासे अहियारा बारसवियप्पा ॥९॥

गुणपर्याया द्रव्यं कायाः पञ्चास्ति सप्त तत्त्वानि ।
अन्येऽपि च नव पदार्थाः प्रमाण नयास्तथा च निक्षेपाः ॥
दर्शनज्ञानचारित्राणि क्रमशः उपचारभेदेतरैः ।
द्रव्यस्वभावप्रकाशे अधिकारा द्वादशविकल्पाः ॥

अथ सूत्रनिर्दिष्टलक्षणाधिकारत्रयाणां प्रयोजनं निर्दिशति –

णायव्वं दवियाणं लक्खणसंसिद्धिहेउगुणणियरं ।
तह पज्जायसहावं एयंतविणासणट्ठा वि ॥१०॥

ज्ञातव्यं द्रव्याणां लक्षणसंसिद्धिहेतुगुणनिकरम् ।
तथा पर्यायस्वभावः एकान्तविनाशनार्थं अपि ॥

गुणस्य स्वरूपं भेदं च निरूपयति –

दव्वाणं सहभूदा (१) सामण्णविसेसदो (२) गुणा णेया ।
सव्वेसिं सामण्णा दह भणिया सोलस विसेसा ॥ ११ ॥

द्रव्याणां सहभूताः सामान्यविशेषतो गुणा ज्ञेयाः ।
सर्वेषां सामान्या दश भणिताः षोडश विशेषाः ॥

---

१ 'द्रव्याणां सहभूता' इत्यनेन द्रव्यसहभाविनो गुणा । गुणलक्षण कथितम् ।

२ 'सामण्णविसेसदो' इत्यनेन गुणानां द्वौ भेदौ प्रक...

दशसामान्यगुणानां नामानि आह-

अत्थित्तं वत्थुत्तं दव्वत्त पमेयत्त अगुरुलहुगुत्तं।
देसत्त चेदणिदरं मुत्तममुत्तं वियाणेह ॥ १२ ॥

अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वम्।
देशत्वं चेतनमितरद् मूर्तममूर्तं विजानीहि ॥

षोडशविशेषगुणानां नामान्याह—

णाणं दंसण सुह सत्ति रूवरस गंध फास गमणठिदी(१)
वट्टणगाहणहेउं मुत्तममुत्तं खु चेदणिदरं च ॥ १३ ॥

ज्ञान दर्शनसुखशक्तिरूपरसगन्धस्पर्शगमनस्थिति।
वर्तनावगाहनहेतुं मूर्तममूर्तं खलु चेतनमितरच्च ॥

ज्ञानादिविशेषगुणानां संभवभेदानाह-

अट्ठचदु णाणदंसणभेया सत्तिसुहस्स इह दो दो।
वण्णरस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णायव्वा ॥ १४ ॥

अष्ट चत्वारो ज्ञानदर्शनभेदाः शक्ति (२) सुखस्येह[३] द्वौ द्वौ।
वर्णरसाः पञ्च गन्धौ द्वौ स्पर्शा अष्ट ज्ञातव्याः ॥

षड्द्रव्येषु प्रत्येकं सम्भवत्सामान्यविशेषगुणान्प्ररूपयति-

एक्केक्के अट्ठट्ठा सामण्णा हुंति सव्वदव्वाणं।

---

१ पूर्वं गमनस्थितिवर्तनावगाहनपदानां परस्परं द्वंद्वे हेतुपदेन सह षष्ठीतत्पुरुषेच कृते पश्चात्सुखादिपदानां समाहार (समाहारे नपुंसकमेकत्वम्) इति नपुंसकान्तैकवचनप्रयोगः।

२ क्षायोपशमिकी शक्तिः क्षायिकी चेति शक्तेर्द्वौ भेदौ।

३ इन्द्रियजमतीन्द्रियं चेति सुखस्य द्वौ भेदौ।

अथ पर्यायस्य स्वरूपं भेदं च दर्शयति—

सामण्ण विसेसा वि य जे सहा होंति दव्वमासिदा ।
परिणाम अह वियारं ताणं तं पज्जयं दुविहं ॥ १७ ॥

सामान्या विशेषा अपि च ये स्वभावा भवन्ति द्रव्याश्रिताः ।
परिणामोऽथ विकारस्तेषां स पर्यायो द्विविधः ॥

पर्यायत्रैविध्यं निरूप्य जीवादिद्रव्येषु कथं पर्यायो भवतीति

सब्भावं खु विहावं दव्वाणं पज्जयं जिणुद्दिट्ठं ॥
सव्वेसिं च सहावं विब्भावं जीवपुग्गलाणं च ॥ १८ ॥

स्वभावः खलु विभावो द्रव्याणां पर्यायो जिनोद्दिष्टः ।
सर्वेषां च स्वभावः विभावो जीवपुद्गलयोः ॥

द्रव्यगुणयोः स्वभावविभावापेक्षया पर्यायाणां चातुर्विध्यं निरूपयति—

दव्वगुणाण सहावा पज्जायं तह विहावदो णेयं ।
जीवे जीवसहावा ते वि विहावा हु कम्मकदा ॥ १९ ॥

द्रव्यगुणयोः स्वभावात्पर्यायस्तथा विभावतो ज्ञेयः ।
जीवे जीवस्वभावाः तेऽपि विभावा हि कर्मकृताः ॥

उक्तं चान्यत्र ग्रन्थे—

पुग्गलदव्वे जो पुण विब्भाओ कालपेरिओ होदि ।
सो णिद्धरुक्खसहिदो बंधो खलु होइ तस्सेव ॥२०॥

पुद्गलद्रव्ये यः पुनः विभावः कालप्रेरितो भवति ।
सः स्निग्धरूक्षसहितो बन्धः खलु तस्यैव ॥

द्रव्यस्वभावपर्यायान्संदर्शयति—

दव्वाणं खु पयेसा जे जे ससहाव संठिया लोए ।

ते ते पुण पज्जाया जाण तुमं दविण सब्भावं ॥२१॥
द्रव्याणां खलु प्रदेशा ये ये स्वभावसंस्थिता लोके ।
ते ते पुनः पर्याया जानीहि त्वं द्रव्याणां स्वभावान् ॥

गुणस्वभावपर्यायान्संदर्शयति

अगुरुलहुगा अणंता समयं समयं समुब्भवा जे वि ।
दव्वाणं ते भणिया सहावगुणपज्जया जाण ॥ २२ ॥
अगुरुलघुका अनन्ताः समयं समयं समुद्भवन्ति येऽपि ।
द्रव्याणां ते भणिताः स्वभावगुणपर्यायाः जानीहि ॥

जीवद्रव्यविभावपर्यायान्निर्दिशति—

जं चदुगदिदेहीणं देहायारं पदेसपरिमाणं ।
अह विग्गहगइजीवे तं दव्वविहावपज्जायं ॥२३॥
यच्चतुर्गतिदेहिनां देहाकारः प्रदेशपरिमाणः ।
अथ विग्रहगतिजीवे स द्रव्यविभावपर्यायः ॥

जीवगुणविभावपर्यायान्निदर्शयति—

मदिसुदओहीमणपज्जयं च अण्णाण तिण्णि जे भणिया ।
एवं जीवस्स इमे विहावगुणपज्जया सव्वे ॥२४॥
मतिश्रुतावधिमनःपर्यया अज्ञानानि त्रीणि ये भणिताः ।
एवं जीवस्येमे विभावगुणपर्यायाः सर्वे ॥

जीवद्रव्यस्वभावपर्यायान्प्रदर्शयति—

देहायारपएसा जे थक्का उहयकम्मणिम्मुक्का ।
जीवस्स णिच्चला खलु ते सुद्धा दव्वपज्जाया
देहाकारप्रदेशा ये स्थिता उभयकर्मनिर्मुक्ताः ।

जीवस्य निश्चयतः स्फुटं ते शुद्धा ज्ञानादयः ॥२५॥

जीवगुणस्वभावशुद्धनिरूपयति–

णाणं दंसण सुह वीरियं च जं उहयकम्मपरिहीणं ।
तं सुद्धं जाण तुमं जीवे गुणपज्जयं सव्वं ॥२६॥

ज्ञानं दर्शनं सुखं वीर्यं च यदुभयकर्मपरिहीनम् ।
तं शुद्धं जानीहि त्वं जीवगुणपर्यायं सर्वम् ॥२७॥

सम्प्रति स्वभावविभावपर्यायरूपेण [illegible]
निरूपयन्नाह—

खंधे परिणामादो परिणामो णिद्धरुक्खगुणजणिदो ।
एउत्तरमेगादी वड्ढदि अनराण उक्कस्सं ॥२७॥

स्कन्धे परिणामतः परिणामः स्निग्धरूक्षगुणजनितः ।
एकोत्तरमेकादि वर्धते अनन्तानुत्कृष्टम् ॥२८॥

परमाणूनां परस्परं बन्धस्वरूपमाह—

णिद्धादो णिद्धेण रुक्खेण रुक्खेण रुक्खि णिदगं वा ।
बज्झदि दोगुणअहिओ परमाणू जहण्णगुणरहिओ ॥२८॥

स्निग्धतः स्निग्धेन रूक्षेण रूक्षो स्निग्धे वा ।
बध्नाति द्विगुणाधिकः परमाणुर्जघन्यगुणरहितः ॥

तथा सति–

संखाऽसंखाऽणंता बादरसुहुमा य हुंति ते खंधा ।
परिणमिदो बहुभेयो पुढवीआदीहि णायव्वा ॥२९॥

संख्याऽसंख्यानंता बादरसूक्ष्माश्च ते भवन्ति स्कन्धाः ।
परिणता बहुभेदाः पृथिव्यादिभिर्ज्ञातव्याः ॥

पुद्गलद्रव्यस्वभावपर्यायान्प्ररूपयति—

जो खलु अणाइणिहणो कारणरूवो हु कज्जरूवो वा ।
परमाणु पोग्गलाणं सो दव्वसहाव पज्जाओ ॥ २० ॥

य खलु अनादिनिधनः कारणरूपो हि कार्यरूपो वा ।
परमाणुः पुद्गलानां स द्रव्यस्वभाव पर्याय ॥

पुद्गलगुणस्वभावपर्यायान् निदर्शयति–

रूवरसगंधफासा जे थक्का तेसु अणुकदव्वेसु ।
ते चेव पोग्गलाणं सहावगुणपज्जया णेया ॥ २१ ॥

रूपरसगंधस्पर्शा ये स्थितास्तेष्वणुकद्रव्येषु ।
ते चैव पुद्गलानां स्वभावगुणपर्याया ज्ञेया ॥

पुद्गलद्रव्यविभावपर्यायान्निरूपयति–

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु ।
अइथूलथूल थूलो सुहमं सुहमं च अइसुहमं ॥ २२ ॥

पृथिवी जलं च छाया चतुरिन्द्रियविषयः कर्मपरमाणु ।
अतिस्थूलस्थूलः स्थूलः सूक्ष्मः सूक्ष्मश्चातिसूक्ष्म ॥

जे संखाई खंधा परिणमिआ दुअणुआदिखंधेहिं ।
ते चिय दव्वविहावा जाण तुमं पोग्गलाणं च ॥२३॥

ये संख्यादिस्कन्धाः परिणमिता द्व्यणुकादिस्कन्धैः ।
ते चैव द्रव्यविभावा जानीहि त्वं पुद्गलानां च ॥

पुद्गलगुणविभावपर्यायान्संदर्शयति–

रूवाइय जे उत्ता ते दिट्ठा दुअणुकारखंधम्मि ।
ते पुग्गलाण भणिया विहावगुणपज्जया सव्वे २४

रूपादिका ये उक्ता ये दृष्टा द्व्यणुकादिस्कन्धे ।
ते पुद्गलानां भणिता विभावगुणपर्ययाः सर्वे ॥

धर्माधर्माकाशकालानां स्वभावद्रव्यगुणपर्ययानाह—

गदिठिदिवट्टणगहणा धम्माधम्मेसु गयणकालेसु ।
गुणसब्भावो पज्जय दवियसहावो दु पुव्वुत्तो ॥२५॥

गतिस्थितिवर्तनावगाहनानि धर्माधर्मयोर्गगनकालयोः ।
गुणस्वभावः पर्ययो द्रव्यस्वभावस्तु पूर्वोक्तः ॥

इति पर्यायाधिकारः ।

अथ द्रव्यस्य व्युत्पत्तिपूर्वकत्वेन लक्षणद्वयमाह—

दवदि दविस्सदि दविदं जं सब्भावेहिं विविहपज्जार
तं पह जीवो पोग्गल धम्मा धम्मं च कालं च ॥२६॥

द्रवति द्रोष्यति द्रुतं सद्भावैर्विविधपर्यायैः ॥
तन्नभो जीवः पुद्गलं धर्मोऽधर्मश्च कालश्च ॥

प्रकारान्तरेण द्रव्यलक्षणं आचष्टे—

तिक्काले जं सत्तं वट्टदि उप्पादवयधुवत्तेहिं ।
गुणपज्जायसहावं अणाइसिद्धं खु तं हवे दव्वं ॥२७॥

त्रिकाले यत्सत्त्वं वर्तते उत्पादव्ययध्रुवत्वैः ।
गुणपर्यायस्वभावं अनादिसिद्धं खलु तद्भवेद् द्रव्यम् ॥

सद्द्रव्यलक्षणयोः परस्परविनाभावित्वं भेदाभेदं च आह—

जह्मा एक्कसहावं तह्मा ववहारदोसहावं खु ।
जह्मा णिदयसहावं तह्मा दोएक्कसब्भावं ॥ २८ ॥

[illegible]

ण [illegible] ण [illegible] मणुं [illegible]
ण [illegible] दव्वं णो [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]

[illegible]

मिणं इह अह णाणइ किह तस्स पुणो विमं[illegible]
अह च अमंतं होइ हु दुम्मगहियं कि ण [illegible]
[illegible] पुनरपि मोक्षमिति [illegible]
अथवा [illegible] हि [illegible] किल [illegible]म् ॥

ननु वासनाता [illegible] वहुला [illegible]—

अहवा वासणदो यं पडिअहिणाणे णियप्पणिच्चावे।
ता सा पंचह भिण्णा खंधाणं वासणा णिच्चं ॥३॥
अथवा वासनात इद प्रत्यभिज्ञाने विकल्पविज्ञानम् ।
तर्हि सा पंचभ्यो भिन्ना स्कन्धानां वासना नित्या ॥

क्षणिकं चोक्तदूषण (क्षणिकपक्षे)—

प्रत्यभिज्ञा पुनर्दानफलं भोगोऽर्जितेनसाम् ।
धर्मोऽस्यादिकं सर्वं क्षणभङ्गाद्विरुध्यते ॥१॥ " इति ।

नित्यपक्षे दूषणमाह—

णिच्चमेव मण्णदि तस्स ण किरिया हु अत्थकारि[illegible]
हु तं वत्थू भणियं जं रहियं अत्थकिरियादि ॥४॥
नित्यमेव मन्यते तस्य न क्रिया ह्यर्थकारित्वम् ।

न हि तद्वस्तु भवति यद्रहितं (१) अर्थक्रियाभिः ॥४६॥

दूषणान्तरमाह

णिच्चे दव्वे गमणट्ठाणं पुण किह सुहासुहा किरिया ।
अह उवयारा किरिया कह उवयारो हवे णिच्चे ॥४७॥

नित्ये द्रव्ये गमनस्थानं पुनः कथं शुभाशुभा क्रिया ।
अथ उपचारात्क्रिया कथमुपचारो भवेन्नित्ये ॥

भेदपक्षे दूषणमाह—

णिच्चं गुणगुणिभेये दव्वाभावं (२) अणंतियं अहवा ।
अणवत्था समवाए किह एयत्तं पसाहेदि ॥ ४८ ॥

नित्यं गुणगुणिभेदे द्रव्याभावोऽनन्तिकोऽथवा ।
अनवस्था समवाये कथमेकत्वं प्रसाधयति ॥

---

१ विगता सत्ता यस्मात्तद्विसत्त्वं असदित्यर्थः 'णत्थि सव्व' स्थाने 'णत्थि सव्वं' । इति १२ समयसारपाठः ।

१ क्षणिकवादिनो हि रूपं, वेदना, विज्ञानं, संस्काराः, संज्ञा इति पञ्च स्कन्धा मन्यन्ते ।

२ यदि सर्वथा गुणगुणिनोर्भेदस्तर्हि सर्वगुणेभ्यो व्यतिरिक्तं नहि किंचिद् द्रव्यमिति द्रव्याभावः । गुणा अपि द्रव्यं विहाय न निराधारास्तिष्ठन्ति इति गुणाभावः । समवायस्तयोरेव समवायोऽपि ताभ्यां भिन्नोऽभिन्नो वा, भिन्नश्चेत्कथं तयोरेव स संबन्धयति । समवायान्तरादिति चेत् सोऽपि भिन्नोऽभिन्नो वेत्यनवस्था भेदपक्षेऽत्र्वोदन्या । सत्ता तस्यां कथमेकत्वं समवायः प्रसाधयेत् ।

[illegible] दूषणमाह—

जागादीओ य भिण्णं णाणं पि य जुत्तिसाहियं [illegible]
तह ते तम्मं परमं तुम्भादो जं ण हु सिद्धं ॥ ५६ ॥
[illegible] न भिन्न [illegible] युक्तिसाधितं (१) [illegible]
[illegible] युक्तितो [illegible] सिद्धम् ॥

अथ किंचिन्महदिति दूषणं दूषणमाह—

सत्तं जो णहु मण्णइ पयत्थसरिसंठियं हि तम्मज्झं
णो णेयं णाहि णाणं ण समयं णिच्छयं जम्हा ॥ ५७ ॥
सत्त्वं यो न हि मन्यते [illegible] हि तत्त्वम् ।
नो ज्ञेयं नहि ज्ञानं न समयो निश्चयो यस्मात् ॥

सर्वं सर्वत्र विद्यते इति सर्वगतमतस्य दूषणमाह—

सव्वं जइ सव्वगयं(२)विज्जदि इह [illegible]
सेवावाणिज्जकज्जे ण कारणं किं पि कस्सेव ॥ ५८ ॥

---

१ ये हि युक्त्या गुणगुण्यादिक भिन्नमनुभवन्तोऽपि [illegible] मभेदः प्रतिपादित इति वर्णयन्ति तेषां सूत्रं युक्तिवर्जितं [illegible] यदिह युक्तितः प्रत्यक्षादिप्रमाणेन सिद्धं तत्र परमतत्त्वमिति [illegible]

२ सर्वं यदि सर्वत्र विद्यते तदा न कोऽपि दरिद्रः स्यात् [illegible] रिद्रेऽपि धनादिवस्तूनां सद्भावात् । एवं च सर्वेऽपि [illegible] प्यर्थं सेवावाणिज्यादि कार्यं कुर्वन्ति । इदानीं यदि सर्वं सर्वत्र [illegible] द्यते, तन्नैरर्थक्यं स्यात् । तथैव हि कार्योत्पादाय [illegible] बुधैरिदानीं तदपि न स्यात् सर्वस्य सर्वत्र विद्यमानत्वात् । न हि [illegible] चित्कार्यं किंचित्कारणमिति ।

णेयं णाणं उहयं तिरोहियं तं च जाणणसमत्थं ।
अहवाविरमावरणं सव्वत्थ विजाणये सव्वा ॥ ५२ ॥
सर्वं यदि सर्वगतं विज्ञाने इहास्ति कोऽपि न दर्शी ।
तेनावाविप्रकाशं न कारण किमपि कर्तव्य ॥
ज्ञेय ज्ञानमुभय तिरोहितं तच्च ज्ञातुमसमर्थम् ।
अथवाविरमावरण सर्वत्र विजानाति सर्वम् ॥

सर्वमेकान्तक्षणभावात्मकमिति यो दृष्टवान्—

जइ सव्वं खणभयं तो किह विविहासहावगं दव्वं ।
एकविणासे णासइ सुहासुहं सव्वलोयाणं ॥५३॥
यदि सर्वं क्षणमयं तर्हि कथं विविधस्वभावकं द्रव्यम् ।
एकविनाशे नश्येत् शुभाशुभं सर्वलोकानाम् ॥
अविद्यावशादेव भेदप्रपञ्चः इति वेदान्तसूत्रं दृष्टवानि-
बंभसहावाभिण्णा जइ हु अविज्जा वियप्पदे कह वा ।
ता वं तस्स सहावं अह पुण्णो पलोयज्जा ॥५४॥
ब्रह्मस्वभावाऽभिन्ना यदि अविद्या विकल्प्यते कथं वा ।
तर्हि सा तस्य स्वभावोऽथ पूर्णः विलोकय ॥

यदि सर्वपर्येषु बोधकानां के बाधका इत्यत आह-

वत्थू हवेइ सव्वं सपक्खेण एव हवंति अपडिक्खा ।
णियसत्ताविक्खा वत्थू मणंति इयरा हु णो अत्था ॥५५॥
वस्तु भवेत् सर्वं स्वपक्षतः पुनः भवन्ति अप्रतीताः ।
स्वसत्तापेक्षा वाचका भवन्ति इतरे हि नो तस्य तु ॥

एका अयुतस्वभावे अनेकरूपा हि त्रिविधभावस्था ।
भिन्ना हि वचनभेदे नहि सा भिन्ना अभेदात् ॥

भव्वगुणादो [१] भव्वा तव्विवरीएण होंति विवरीया
सब्भावेण सहावा [२] सामण्णसहावदो सव्वे ॥६३॥
भव्यगुणाद्भव्यास्तद्विपरीतेन भवन्ति विपरीताः ।
स्वभावेन स्वभावा सामान्यस्वभावतः सर्वे ॥

अणुहवभावो चेयणमचेयणं होदि तस्स विवरीयं ।
रूवाइपिंड मुत्तं विवरीये ताण विवरीयं ॥६४॥
अनुभवभावश्चेतनमचेतनं भवति तस्य विपरीतम् ।
रूपादिपिण्डो मूर्तं विपरीते तेषां विपरीतम् ॥

खेत्तं पएसणाम एकाणेकं च दव्वपज्जयदो ।
सहजादो रूवंतरगहणं जो सो हु विब्भावो ॥६५॥
क्षेत्रं प्रदेशनाम एकानेकं च द्रव्यपर्ययतः ।
सहजाद्रूपान्तरग्रहणं यस्य हि विभावः ॥

कम्मक्खयादु सुद्धो मिस्सो पुण होइ इयरजो भावो ।
जं विय दव्वसहावं उवयारं तं पि ववहारा ॥ ६६ ॥
कर्मक्षयाच्छुद्धो मिश्र पुनर्भवति इतरजो भाव. ।
यदपि च द्रव्यस्वभाव उपचार सोऽपि व्यवहारात् ॥

१ [illegible] भव्यत्वेन [illegible] ।
२ [illegible] अभव्या ।
३ [illegible] स्वभावतः सर्वाः ।

षभावानां यथा निरर्थकत्व सार्थकत्व वा तथा दर्शयति—

णिरवेक्खे एयन्ते संकरआदीहि दूसिया भावा ।
णो णिजकज्जे अरिहा विवरीए ते वि खलु अरिहा ॥६७

निरपेक्षे एकान्ते संकरादिभिर्दूषिता भावा ।
नो निजकार्येऽर्हाः विपरीते तेऽपि खल्वर्हाः ॥

गुणपर्याययोः स्वभावत्वमनुक्तस्वभावानामन्तर्भावं च दर्शयति—

गुणपज्जायसहावा दव्वसमुवगया हु ते जम्हा ।
णिच्छह अंतरभावं अण्णगुणाईण भावाणं ॥ ६८ ॥

गुणपर्यायस्वभावा द्रव्यसमुपगता हि ते यस्मात् ।
निश्चयमन्तर्भावं अन्यगुणादीनां भावानाम् ॥

प्रत्येकद्रव्यस्वभावसंख्यामाह—

इगवीसं तु सहावा जीवे तह जाण पोग्गले णयदो ।
इयराणं संभवदो णायव्वा णाणवंतेहिं ॥ ६९ ॥

एकविंशतिस्तु स्वभावा जीवे तथा जानीहि पुद्गले नयतः ।
इतरेषां सम्भवतो ज्ञातव्या ज्ञानवद्भिः ॥

तदेवाह प्रत्येकं—

इगवीसं तु सहावा दोण्हं [१] तिण्हं [२] तु सोडसा भणिया ।
पंचदसा पुण काले दव्वसहावा [३] य णायव्वा ॥७०॥

---

१ जीवपुद्गलयो. । २ धर्माधर्माकाशानाम् । (३) तथा चोक्तं—एक
विंशतिभावा स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः । धर्मादीनां षोडश स्युः काले
पञ्चदश स्मृताः ॥१॥ धर्मादित्रयाणां चेतनत्वमनेकप्रदेशत्वं विना
षोडशस्वभावत्वं मूर्तस्वभावत्वमशुद्धस्वभावमपनयेत्. कालस्य बहुप्रदे
शत्वमपनयेत् ।

एकविंशतिस्तु स्वभावा द्वयोस्त्रयाणां तु षोडश भणिताः ।
पञ्चदश पुनः काले द्रव्यस्वभावाश्च ज्ञातव्याः ॥

स्वभावस्वभाविनोः स्वरूपं प्रमाणनयविषयं व्याचष्टे—

सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादिदोषत्
तथा *असद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात् [१] । नित्यस्यैकरूपत्
एकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्या
भावः । अनित्यपक्षेऽपि निरन्वयत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्य
भावः । एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात् । विशेषाभ
(२) सामान्यस्याप्यभावः । अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराध
त्वात् । भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाक
रित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अभेद
क्षेऽपि सर्वेषामेकत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभा
द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात् संकरादि (३) दोषस
भवः । अभव्यस्यापि तथा शून्यताप्रसंगः स्वरूपेणाप्यभवनात्
स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः । विभावपक्षेऽपि तथा मोक्ष
स्याप्यसंभवः । चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः

१ 'असद्रूपस्य' इत्यत आरभ्य 'शून्यताप्रसंगात्' इति
तावत् पाठः पुस्तके नास्ति ।

२ निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत् । सामान्यरहितत्वा
द्विशेषास्तद्वदेव हि ।

३ सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः संकरः । परस्परविषयगमनं व्यतिकरः
इति दोषः ।

उहयं जुगवपमाणं गहइ णओ गउणमुक्खभावेन ॥७१॥
अस्तित्वादिस्वभावाः सर्वे स्वभाविनः स्वस्वभावाः ।
उभयं युगपत्प्रमाणं गृह्णाति नयो गौणमुख्यभावेन ॥

स्याच्छब्दरहितत्वेन दोषमाह—

णियमहेण विणा इह विसयं दोह्णं वि जे णिगिह्णंति ।
मोत्तूण अमियभोज्जं विसभोज्जं ते विकुव्वंति ॥ ७२ ॥
स्याच्छब्देन विनेह विषयं द्वयोरपि ये गृह्णन्ति ।
मुक्त्वामृतभोज्यं विषभोज्यं तेऽपि कुर्वन्ति ॥

स्याच्छब्दसहितत्वे गुणमाह—

णियमहेण य जुत्ता घेन्नि णयत्था हु वत्थुसब्भावं ।
वत्थू जुत्तिसिद्धं जुत्ती पुण णयपमाणादो ॥७३॥
स्याच्छब्देन च युक्ता गृह्णन्ति नयार्था हि वस्तुसद्भावम् ।
वस्तु युक्तिसिद्धं युक्तिः पुनर्नयप्रमाणेन ॥

उपसंहरमाह—

इदि पुव्वुत्ता धम्मा णियमाविक्खा ण गेह्णए जो हु ।
सो इह मिच्छादिट्ठी णायव्वो पवयणे भणिओ ॥७४॥
इति पूर्वोक्तधर्म-स्यात्सापेक्षान् गृह्णीयाद् यो हि ।
स इह मिथ्यादृष्टिः [illegible] प्रवचने भणितः ॥

सर्वधर्मविकल्पानां [illegible] संख्या [illegible]—

णाणिगि कम्मे भणिया इक्को णाइंय इयर विण्णाणी ।
णाणा जीवे भणिया वसेण मज्झेवि णायव्वा ॥७५॥
[illegible]

भावकर्मस्वरूपमाह—

जह जीवणमयाई जीवे कम्मा भवेइ कम्माणं ।
तं पि य दव्वे भावे जाण मजोगिम्म परिणमे ॥ ८० ॥

यथा जीवपरिणामादि जीवे कर्मणामेव कर्मणाम् ॥
भोक्तरि च द्रव्य भावः पर्यायोऽसंख्यातम् ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां भेदं बन्धहेतुश्च सूचयति—

मूलुत्तर सग इयरा भेया पयडीण ठीदि उदयाणं ।
हेऊ दो पुण पुव्वा हेऊ पगादि णायव्वा ॥ ८१ ॥

मूलोत्तराद्यन्यभेदा भेदाः प्रकृतीनां प्रकृत्युदययोः ।
हेतू द्वौ पुनः पूर्वा हेतवश्चादि ज्ञातव्याः ॥

भावेन बन्धहेतूनाह—

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य जीवभावा हु ।
दव्वं मिच्छत्ताइ य पोग्गलदव्वाण आयरणा ॥ ८२ ॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषायो योगाश्च जीवभावा हि ।
द्रव्यं मिथ्यात्वादि च पुद्गलद्रव्याणामावरणानि ॥

भावद्रव्ययोरन्योन्यं कार्यकारणभावमाह—

भावो दव्वणिमित्तं दव्वं पि य भावकारणं भणियं ।
अण्णोण्णं वज्झंता कुणंति पुट्ठी हु कम्माणं ॥ ८३ ॥

भावो द्रव्यनिमित्तं द्रव्यमपि च भावकारणं भणितम् ॥
अन्योन्यं बध्नन्तः कुर्वन्ति पुष्टिं हि कर्मणाम् ॥

मूलप्रकृतीनां नामान्याह—

दंसणणाणावरणं वेदामोहं तु आउ णामं च ।
गोदंतराय मूला पयडी जीवाण णायव्वा ॥ ८४ ॥

दर्शनज्ञानावरणे वेद्यो मोहस्तु आयुर्नाम च ।
गोत्रमन्तरायो मूलप्रकृतयो जीवानां ह्यनन्या ॥

उत्तरप्रकृतीनां यथाक्रमं सङ्ख्यामाह -

पण णव दो अट्ठवीसा चउ तेणउदी तहेव दो पंच ।
एदे उत्तरभेया एयाणं उत्तरोत्तरा हुंति ॥ ८५ ॥

नव पञ्च [illegible] अष्टाविंशतिश्चत्वारस्त्रिनवतिस्तथैव द्वौ पञ्च ।
एते उत्तरभेदा एतासां उत्तरोत्तरा भवन्ति ॥

एता सामान्येन शुभाशुभभेदभिन्ना जीवानां सुखदुःखफलदा भवन्तीत्याह -

असुहसुहाणं भेया सव्वा वि य ताउ होंति पयडीओ ।
काऊण पज्जयठिदी सुहदुक्खं फलंति जीवाणं ॥८६॥

अशुभशुभानां भेदाः सर्वा अपि च ता भवन्ति प्रकृतयः ।
कृत्वा पर्यायस्थितिं सुखदुःखं फलन्ति जीवानाम् ॥

पर्यायस्थितिकारणमाह

सुरणरणारयतिरिआ पयडीओ णामकम्मणिव्वत्ता ।
जहण्णोक्कस्समज्झिमआउवसेणंतिया हु ठिदी ॥८७॥

सुरनरनारकतिर्यञ्चः प्रकृतयो नामकर्मनिर्वृत्ता ।
जघन्योत्कृष्टमध्यमायुर्वशेनान्तिका हि स्थितिः ॥

चतुर्गतिजीवानां जघन्यमध्यमोत्कृष्टायुःप्रमाणं कथयति तत्र तावन्मनुष्याणाम्-

अन्तोमुहुत्त अवरा वरा हु मणुआण होइ पल्लतियं ।
मज्झिम अवरा वड्ढी जाव वरं समयपरिहीणम् ॥८८॥

अन्तर्मुहूर्तमवरा परा हि मनुजानां भवति पल्यत्रयम् ।

पंचावस्था देहे कर्मणो भवन्ति सकलजीवानाम् ।
उपाधिर्बाल्यत्व यौवनं वृद्धत्वं भवति तथा मरणम् ॥

चतुर्विधदुःखानां नाम लक्षणानि चाह—

सहजं खुधाइजादं णयमित्तं सीदवादमादीहिं ।
रोगादिआ य देहज अणिट्ठजोये तु माणसियं ॥९३॥

सहजं क्षुदादिजातं नैमित्तिकं शीतवातादिभिः ।
रोगादिकाश्च देहजं अनिष्टयोगे तु मानसिकम् ॥

विभावस्वभावफलमाह—

विब्भावादो बंधो मोक्खो सब्भावभावणालीणो ।
तं खु णराणं णच्चा पच्छा आराहओ होई ॥९४॥

विभावाद्बन्धो मोक्षः सद्भावभावनालीनः ।
तं खलु नराणां ज्ञात्वा पश्चादाराधको भवति ॥

एवमनेकान्तं समर्थ्य तत्फलं च दर्शयति—

एवं सियपरिणामी बज्झदि मुंचेदि दुविहहेदूहिं ।
ण विरुज्झदि बंधाई जह एयंते विरुज्झेई ॥९५॥

एवं स्यात्परिणामी बध्नाति मुंचति द्विविधहेतुभिः ॥
न विरुध्यते बन्धादिर्यथैकान्ते विरुध्यते ॥

इति द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥

इदानीं विशेषगुणानां स्वामित्वमनर्थनार्थेनाह
नग गाथाद्वयेनाधिकार चूलिका—

सामण्णगुणा जे गुणपज्जयदव्वाण लक्खणं मेत्ता।
णय विसयदंसणत्थे ते चेव विसेसदो भणिदो ॥१७॥

सामान्यैका ये गुणपर्ययद्रव्याणां लक्षणं संख्या।
नयविषयदर्शनार्थं तांश्चैव विशेषतो भणिष्ये ॥

गयणं पोग्गल जीवा धम्माधम्मं सु काल दव्वं च।
भणियव्वा अणुकमसो जहट्ठिया गयणगब्भेसु ॥१७॥

गगन पुद्गल जीवा धर्माधर्मौ खलु कालः द्रव्य च।
भणितव्यानि अनुक्रमशो यथास्थितानि गगनगर्भेषु ॥

गगनद्रव्यस्य नाथद्विरूपलक्षणं भेदं चाह—

चेयणरहियममुत्तं अवगाहणलक्खणं च सव्वगयं।
लोयालोयविभेयं तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ॥ १८ ॥

चेतनारहितममूर्तं अवगाहनलक्षणं च सर्वगतम्।
लोकालोकद्विभेदं तन्नभोद्रव्यं जिनोद्दिष्टम् ॥

लोकालोकयोर्लक्षणमाह—

जीवेहिं पुग्गलेहि य धम्माधम्मेहि जं च कालेहिं
...द्धं तं लोयं सेसमलोयं हवे णन्तम् ॥ १९ ॥

...पुद्गलैश्च धर्माधर्मैश्च यश्च कालैः।
...स लोकः शेषोऽलोको भवेदनन्तः ॥

...अनुयोगिनः स्वरूपं निरूप्य पुद्गलस्वरूपमाह—

...णाइमाणिहणं अकिट्टिमं तिविहभेयसंठाणं।

परीणामिजीवस्वरूपमाह-

णो खलु जीवसहावो णो जणिओ णो खयेण संभूदो ।
कम्माणं सो जीवो भणिओ इह परमभावेण ॥११६॥
न खलु जीवस्वभावो नो जनितो नो क्षयेण संभूतः ।
कर्मणां स जीवो भणित इह परमभावेन ॥

अचेतन्यवादिमताशङ्कया चैतन्य स्वामित्वं चाह-

आदा चेदा भणिओ सा इह फलकज्जणाणभेदा हु ।
तिण्हं वि य संसारी णाणे [१]खलु णाणदेहा हु ॥११७
आत्मा चेतयिता भणित सा इह फलकार्यज्ञानभेदा हि ।
तिसृणामपि संसारी ज्ञाने खलु ज्ञानदेहा हि ॥

चेतनास्वामित्वे विशेषमाह-

थावर फलेसु चेदा तस उहयाणं पि होंति णायव्वा ।
अहव असुद्धे णाणे सिद्धा सुद्धेसु णाणेसु ॥ ११ ॥
स्थावरः फलेषु चेतयिता त्रसा उभयोरपि भवंति ज्ञातव्या. ।
अथवा अशुद्धे ज्ञाने सिद्धाः शुद्धेषु ज्ञानेषु ॥

निरुपयोगिकटाक्षमुपेक्ष्य जीवस्योपयोगमाह

उवओगमओ जीवो उवओगो णाणदंसणे भणिओ ॥
णाणं अट्ठपयारं चउभेयं दंसणं णेयं ॥ ११९ ॥
उपयोगमयो जीव उपयोगो ज्ञानदर्शने भणितः ।
ज्ञानमष्टप्रकारं चतुर्भेदं दर्शनं ज्ञेयम् ॥

---

१ ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफलचेतनेति चेतना त्रिविधा तत्रैतासां तिसृणामपि स्वामी संसारी । ज्ञानचेतनायां तु ज्ञानदेहाः केवलज्ञानशरीराः स्वामिनो भवंति ।

मूर्तकांतनिषेधार्थं स्यादमूर्तत्वमाह--

रूवरसगंधफासा सद्दवियप्पा वि णत्थि जीवस्स।
णो संठाणं किरिया तेण अमुत्तो हवे जीवो ॥ १२० ॥

रूपरसगंधस्पर्शाः शब्दविकल्पा अपि न संति जीवस्य।
नो संस्थानं क्रिया तेनामूर्तो भवेज्जीवः ॥

अमूर्तपक्षेऽपि तथा स्यान्मूर्तत्वमाह--

जो हु अमुत्तो भणिओ जीवसहावो जिणेहि परमत्थो।
उवयरियसहावादो अचेयणो मुत्तिसंजुत्तो ॥ १२१ ॥

यथामूर्तो भणितो जीवस्वभावो जिनैः परमार्थः।
उपचरितस्वभावात् अचेतनो मूर्तिसंयुक्तः ॥

व्यापकत्वमणुमात्रत्वमपास्य देहमात्रत्वमाह--

गुरुलघुदेहपमाणो अप्पा चत्ताइ सत्तसमुग्घायं।
ववहारा णिच्छयदो असंखदेसो हु सो णेओ ॥ १२२ ॥

गुरुलघुदेहप्रमाण आत्मा त्यक्त्वा हि सप्तसमुद्घातान्।
व्यवहारान्निश्चयतोऽसंख्यप्रदेशो हि स ज्ञेयः ॥

प्रकारणवशाद्देहस्य भेदमाह --

देहा य हुंति दुविहा थावरतसभेददो य विण्णेया।
थावर पंचपयारा बादरसुहुमा वि चदु तसा तह य।

देहाश्च भवन्ति द्विविधाः स्थावरत्रसभेदतश्च विज्ञाः।
स्थावराः पंचप्रकारा बादरसूक्ष्मा अपि चत्वारस्त्रसास्तथा च ॥

बौद्धसांख्यदर्शनं प्रति भोक्तृत्वमाह--

देहजुदो सो भुत्ता भुत्ता सो चेव होइ इह कत्ता।

कत्ता पुण कम्मजुदो जीवो संसारिओ भणिओ ॥१२४

हेतुत: न भोक्ता भोक्ता भवेव भवति इह कर्ता ।
कर्ता पुन कर्मयुतो जीव सांसारिको भणेन ॥

उभयथ कर्मणो नयमवलम्ब्य गविभागादि क ाह

कम्मं दुविहवियप्पं भावसहावं च दव्वसहावं ।
भावे सो णिच्छयदो कत्ता ववहारदो दव्वे ॥१२५॥
बंधो अणाइणिहणो संताणादो जिणेहि जो भणिओ ।
सो चेव साइणिहणो जाण तुम समयबंधेण ॥१२६॥
कर्म द्विविधविकल्पं भावस्वभावं च द्रव्यस्वभावं च ।
भावे स निश्चयेन कर्ता व्यवहारतो द्रव्ये ॥
बन्धोऽनादिनिधन सन्तानात् जिनैर्यो भणित ।
स चैव सादिनिधनो जानीहि त्वं समयबन्धेन ॥

॥ कश्चिन्नश्यति किं नश्यति केन हेतुना प्रश्नाभिप्राय -

कारणदो इह भव्वे णासइ बंधो विणाण कम्मेण ।
ण हु तं अभव्विगाणं जम्हा पयडी ण मुंचेइ ॥१२७॥
कारणत इह भव्ये नश्यति बन्धो विज्ञानेन कर्मण ।
न हि तं अभव्यसत्वे यस्मात्प्रकृतिर्न मुच्यते ॥

खंधा जे पुव्वुत्ता हवंति कम्माणि जीवभावेण ।
लद्धा पुण ठिदिकालं गलंति ते णियफलं दत्ता ॥१२८
स्कन्धा ये पूर्वोक्ता भवन्ति कर्माणि जीवभावेन ।
लब्ध्वा पुन स्थितिकाल गलन्ति तानि निजफलं दत्त्वा ॥

बन्धं तावदिवाङ्कुरादिवत् कर्मबन्धयोर्निमित्तं मुख्यं निमित्तं च-

मोणो दु होइ जइया तइया सो कुणइ रायमादीहिं।
एवं बंधो जीवे णाणावरणादिकम्मेहिं ॥१२९॥
मिच्छे मिच्छाभावो सम्मे सम्मा वि होइ जीवाणं।
बन्धू णिमित्तमेत्तं सरागपरिणामवीयरायाए ॥१३०॥

मोहः हि भवति यावत्तावत्स करोति रागादिभिः।
एवं बन्धो जीवे ज्ञानावरणादिकर्मभिः ॥
मिथ्यात्वे मिथ्याभावः सम्यक्त्वे सम्यगपि भवति जीवानाम्
बन्धु निमित्तमात्रं सरागपरिणामवीतरागाये [१] ॥

बीजाङ्कुरन्यायेन कर्मणः फलमुपदिशति गाथाद्वयेनेति-

कम्मं कारणभूदं देहं कज्जं खु भवत्त देहादो।
अक्खादु विसयरागं रागादि णिबज्झदे तंपि ॥१३१॥

कर्म कारणभूत देहः कार्यं खलु भवतो देहतः ॥
अक्षात्तु विषयरागः रागादि निबध्नाति तदपि ॥

तेण चउग्गइदेहं गेह्णइ पंचप्पयारियं जीवो।
एयंतं गिह्णंतो पुणो पुणो बंधदे कम्मं ॥१३२॥

तेन चतुर्गतिदेह गृह्णाति पंचप्रकारकं जीवः।
एकान्तं गृह्णन्पुनः पुनर्बध्नाति कर्म ॥

इह एव मिच्छदिट्ठी कम्मं संजणइ कम्मभावेहिं।
अह तीयंकर णेयं त तं अवरोप्परं तह व ॥१३३॥

इहैव मिथ्यादृष्टिः कर्म संजनयति कर्मभावैः ॥

---

[१] अयः सम्बन्धस्तस्मिन्।

उक्तं चान्यत्र ग्रन्थे—

एयम्मि पएसे खलु इयरपएसा य पंच णिद्दिट्ठा ।
ताणं कारणकज्जे उहय सरूवेण णायव्वं ॥
एकस्मिन्प्रदेशे खलु इतरप्रदेशाश्च पंच निर्दिष्टाः ।
तेषां कारणकार्यं उभयं स्वरूपेण ज्ञातव्यम् ॥
पुग्गलमज्झत्थोयं कालाणू मोक्खकारणं होई ।
समओ अरूवि जह्मा पुग्गलमुत्तो ण मोक्खो हु ॥१३॥
पुद्गलमध्यस्थो हि कालाणुर्मोक्षकारणं भवति ।
समयोऽरूपी यस्मात्पुद्गलमुक्तो न मोक्षः खलु ॥

व्यवहारकालं निरूपयति—

समयावलि उस्सासो थोवो लव णालिया मुहुत्त दिणं ।
पक्खं च मास वरिसं जाण इमं सयल ववहारं ॥१४॥
समय आवलि उच्छ्वासः स्तोको लवो नालिका मुहूर्तः दिनं
पक्षश्च मासो वर्षं जानीहीमं सकलं व्यवहारम् ॥

समयकालप्रदेशमिदवर्णे आह तत्र तावदेकसमयस्य प्रमाणमाह—

णहएयपएसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालं ॥१५॥
नभएकप्रदेशस्थः परमाणुर्मन्दगतिप्रवर्तमानः ।
द्वितीयमनन्तरक्षेत्रं यावत्कि याति स समयकालः ॥

प्रदेशस्य प्रमाणमाह —

जेत्तियमेत्तं खेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वस्स ।

चतुर्दशरज्जूत्सेधो लोकः शतानि त्रीणि त्रिचत्वारिंश

विगयसिरो कडिहत्थो तालियजंघो जुवाणरो

तेणायारेण ठिओ तिविहो लोगो मुणेयव्वो ॥

विगतशिरः कटिहस्तस्तालितजंघो युवानर ऊर्ध्वः ।

तेनाकारेण स्थितस्त्रिविधो लोको मन्तव्यः ॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु स्वभावा द्रष्टव्या –

दव्वे खेत्ते काले भावे भावा फुडं य लोएज्जा ।

एवं हि थोवबहुगा णायव्वा एण मग्गेण ॥१५

द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे भावाः स्फुटं च लोकनीयाः ।

एवं हि स्तोकबहुका ज्ञातव्या अनेन मार्गेण ॥

इति श्री नयचक्रनाम्नि ग्रंथे द्रव्याधिकारः समाप्तः ।

सर्वेषामस्तित्वं कायत्वं पंचानां प्रदेशसंख्यां चाह–

सव्वेसिं अत्थित्तं णियणियगुणपज्जएहि संजुत्तं ।

पंचेव अत्थिकाया उवइट्ठा बहुपदेसादो ॥ १५८

सर्वेषामस्तित्वं निजनिजगुणपर्ययैः संयुक्तम् ।

पंचैवास्तिकाया उपदिष्टा बहुप्रदेशतः ॥

प्रत्येकं प्रदेशप्रमाणमाह—

जीवे धम्माधम्मे हुंति पदेसा [illegible] संखपरिहीणा ।

गयणे णंताणंता तिविहा पुण पोग्गले णेया ॥ १

जीवे धर्माधर्मयोर्भवन्ति प्रदेशा [illegible] संख्यापरिहीणाः ।

गगनेऽनन्तानन्तास्त्रिविधाः पुनः पुद्गले ज्ञेयाः ॥

इति पञ्चास्तिकायाः ।

बन्धस्वरूपमाह.

अप्पपएसा मुत्ता पुग्गलसत्ती तहाविहा णेया।
अण्णोण्णं मिल्लंता बंधो खलु होइ णिद्धाइ ॥ १५३ ॥
आत्मप्रदेशा मूर्ताः पुद्गलशक्तयस्तथाविधा ज्ञेयाः।
अन्योन्यं मिलन्तो बन्धः खलु भवति स्निग्धादि. ॥

पुनः चातुर्विध्यकथनम्.

सप्पदेसेहिं अण्णोण्णपवेसेण कसायादो।
बंधो चउव्विहो खलु ठिदिपयडिपदेसअणुभागा ॥
स्वप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशेन कषायात्।
बन्धश्चतुर्विधः खलु स्थितिप्रकृतिप्रदेशानुभागात् ॥ १५४ ॥

एवं चतुर्विधबन्धस्य कारणमाह.

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।
एवं बंधसरूवं णायव्वं जिणवरे भणियं ॥ १५५ ॥
योगात् प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः।
एवं बन्धस्वरूपं ज्ञातव्यं जिनवरैर्भणितम् ॥

संवरस्वरूपं निरूपयति.

रुंधिय छिद्दसहस्से जलजाणे जह जलं तु णासवदि।
मिच्छत्ताइअभावे तह जीवे संवरो होई ॥ १५६ ॥
रुद्धे छिद्रसहस्रे जलयाने यथा जलं तु नास्रवति।
मिथ्यात्वाद्यभावे तथा जीवे संवरो भवति ॥

निर्जराया लक्षणं भेदौ चाह.

निरबद्धकम्मणिवहं जीवपदेसा हु जं च परिगलइ।

शुभोदयः शुभगोत्रं शुभनाम शुभायुर्निरनुपम्
तद्विपरीतं पापं जानीहि त्वं द्रव्यभावाभ्याम् ॥

अहवा कारणभूदा तेसिं च वयव्वयाइं इह भणिदा ।
ते खलु पुण्णं पावं जाण इमं पवयणे भणियं ॥१६२॥
अथवा कारणभूतान्येषां च व्रताव्रतादि इह भणितम् ।
तत्खलु पुण्यं पापं जानीहि इदं प्रवचने भणितम् ॥

अजीव पुण्णपावे असुद्धजीवे तहासवे बंधे ।
सामी मिच्छादिट्ठी सम्मादिट्ठी हवदि सेसे ॥ १६३ ॥
अजीवे पुण्यपापे अशुद्धजीवे तथास्रवे बन्धे ।
स्वामी मिथ्यादृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्भवति शेषे ॥

सम्यग्भूतस्य विपर्ययेणः फलं दर्शयति.

सामी सम्मादिट्ठी जिय संवरण णिज्जरा मोक्खो ॥
सुद्धो चेयणरूवो तह जाण सुणाणपच्चक्खं ॥१६४॥
स्वामी सम्यग्दृष्टिः जीवे संवरणे निर्जरायां मोक्षे ।
शुद्धश्चेतनरूपस्तथा जानीहि सुज्ञानप्रत्यक्षः ॥

णच्चा दव्वसहावं जो सद्दहणगुणमंडिओ णाणी ।
चारित्तरयणपुण्णो पच्छा सो णिव्वुदिं लहई ॥१६५॥
ज्ञात्वा द्रव्यस्वभावं यः श्रद्धानगुणमण्डितो ज्ञानी ।
चारित्ररत्नपूर्णः पश्चात्स निर्वृतिं लभते ॥

इति पदार्थाधिकारः ।

वीरंजिनं नमस्कृत्य युक्तिव्याख्यानार्थमाह वीरमिति -

वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं ।
पणविवि वीरजिणिंदं पमाणणयलक्खणं वोच्छे ॥१६६

वीरं विषयविरक्तं विगतमलं विमलज्ञानसंयुक्तम् ।
प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं प्रमाणनयलक्षणं वक्ष्ये ॥

आगमादेव पर्याप्तं किं युक्तिप्रयासेनेति [illegible] न यतः

जस्स णहु तिवग्गकरणं तस्स ण तिवग्गस्स साहणं होइ ।
तम्हातियं जइ इच्छइ ता तियवग्गं मुणइ पढमं ॥१६७

यस्य नहि त्रिवर्गकरणं तस्य न त्रिवर्गस्य साधनं भवति ।
तस्मात्त्रयं यदि इच्छथ तर्हि त्रिवर्गं मन्यस्व प्रथमम् ॥

त्रिवर्गं निरूपयति -

णिच्छयणयपमाणा दव्वस्स सुद्ध एव सो अप्पा ।
तक्कं पवयणणामा अज्झप्पं होइ हु तिवग्गं ॥ १६८ ॥

निश्चयनयप्रमाणौ द्रव्यस्य शुद्ध एव य आत्मा ।
तर्कः प्रवचननामा अध्यात्म भवति हि त्रिवर्गः ॥

प्रमाणस्य प्रयोजनमाह.

कज्जं सयलसमत्थं जीवो साहेइ वत्थुगहणेण ।
वत्थू पमाणसिद्धं तम्हा तं जाण णियमेण ॥ १६९ ॥

कार्यं सकलसमर्थं जीवः साधयति वस्तुग्रहणेन ।
वस्तु प्रमाणसिद्धं तस्मात्तज्जानीहि नियमेन ॥

प्रमाणस्य स्वरूपं दर्शयति

गेण्हइ वत्थुसहावं अविरुद्धं सम्मरूव जं णाणं ।
भणियं खु तं पमाणं पच्चक्खपरोक्खभेएहिं ॥१७०॥

गृह्णाति वस्तुस्वभावं अविरुद्धं सम्यग्रूपं यज्ज्ञानम् ।
भणितं खलु तत्प्रमाणं प्रत्यक्षपरोक्षभेदाभ्याम् ॥

प्रमाणस्य भेदं कथयति—

मइसुइ परोक्खणाणं ओहीमण हवइ वियलपच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा अणोवमं सयलपच्चक्खं ॥ १७१

मतिश्रुती परोक्षज्ञानं अवधिमनो भवति विकलप्रत्यक्षम् ।
केवलज्ञानं च तथा अनुपमं सकलप्रत्यक्षम् ॥

प्रमाणस्य विषयं निरूपयति—

वत्थू पमाणविसयं णयविसयं हवइ वत्थुएयंसं ।
जं दोहि णिण्णयट्ठं तं णिक्खेवे हवे विसयं ॥ १७२

वस्तु प्रमाणविषयं नयविषयो भवति वस्त्वेकांशः ।
यो द्वाभ्यां निर्णीतार्थः स निक्षेपे भवेद्विषयः ॥

नययोजनिकाक्रममाह—

णाणासहावभरियं वत्थुं गहिऊण तं पमाणेण ।
एयंतणासणट्ठं पच्छा णयजुंजणं कुणह ॥ १७३ ॥

नानास्वभावभरितं वस्तु गृहीत्वा तत्प्रमाणेन ।
एकान्तनाशनार्थं पश्चान्नययोजनं कुरुत ॥

उक्तञ्च गाथात्रयेणात्यविषयमाह्वन्दे

सवियप्प णिव्वियप्पं पमाणरूवं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तहविह णया वि भणिया सवियप्पा णिव्वियप्पा वि॥

सविकल्पं निर्विकल्पं प्रमाणरूपं जिनैर्निर्दिष्टम् ।
तथाविधा नया अपि भणिताः सविकल्पा निर्विकल्पा अपि

अपि चोक्तम्

कालत्तयसंजुत्तं दव्वं गिह्णेइ केवलं णाणं ।
तम्ह णयेण वि गिह्णइ भूदोऽभूदो य वट्टमाणो वि॥२॥
कालत्रयसंयुक्तं द्रव्यं गृह्णाति केवलं ज्ञानम् ।
तथा नयेनापि गृह्यते भूतोऽभूतश्च वर्तमानोऽपि ॥

अपि चोक्तम्—

मणसहियं सवियप्पं णाणचउक्कं जिणेहि णिद्दिट्ठं ।
तव्विवरीयं इयरं आगमचक्खूहि णायव्वं ॥ २ ॥
मनःसहितं सविकल्पं ज्ञानचतुष्कं जिनैः निर्दिष्टम् ।
तद्विपरीतमितरत् आगमचक्षुभिर्ज्ञातव्यम् ॥

इति प्रमाणाधिकारः ॥

अथ नयस्वरूपमाह—

जं णाणीण वियप्पं सुअभेयं वत्थुअंससंगहणं ।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥१७४॥
यो ज्ञानिनां विकल्पः श्रुतभेदो वस्त्वंशसंग्रहणम् ।
स इह नयः प्रोक्तो ज्ञानी पुनस्तैर्ज्ञानैः ॥

नयप्रयोजनं प्रदर्शयति—

जह्मा णयेण ण विणा होइ णरस्स सियवायपडिवत्ती ।
तह्मा सो णायव्वो एयन्तं हंतुकामेण ॥१७५॥
यस्मान्नयेन न विना भवति नरस्य स्याद्वादप्रतिपत्तिः ।
तस्मात्स ज्ञातव्य एकान्तं हन्तुकामेन ॥

एतत्समर्थनार्थं दृष्टान्तमाह–

जह सद्धाणमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणनिलए ।
धाओ वा एयरसो तह णयमूलं अणेयंतो ॥१०३॥
यथा सद्धानादिः सम्यक्त्वं यथा तपआदिगुणनिलये ।
धातुः वैकरसस्तथा नयमूलोऽनेकान्तः ॥

नैकान्तेन वस्तुस्वभावः स्यादिति निदर्शयन्नाह–

तच्च विस्साविसप्पं एयवियप्पेण साहए जो हु ।
तस्स ण सिज्झइ वत्थू किह एयन्तं पसाहेदि ॥१
तत्त्व विश्वविकल्पं एकविकल्पेन साध्नोति यो हि ।
तस्य न सिध्यति वस्तु कथमेकान्तं प्रसाधयति ॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे–

पञ्चवर्णात्मकं चित्रं तत्र वर्णैकग्राहकम् ।
क्रमाक्रमस्वरूपेण कथं गृह्णाति भो वद ॥१॥
सर्वथैकान्तरूपेण यदि जानाति वास्तवं ।
भूरिधर्मात्मकं वस्तु केन निश्चीयते स्फुटम् ॥

स्वार्थाभिलाषिणां स्वार्थस्य मार्गमनुमार्गं च दर्शयति–

झाणं झाणब्भासं झाणस्स तहेव भावणा भणिया
मोत्तूण झाणभासं वेहि पिय संजुओ समणो ॥१०
ध्यानं ध्यानाभ्यासो ध्यानस्य तथैव भावना भणिता ।
मुक्त्वा ध्यानाभ्यासं द्वाभ्यामपि च संयुतः श्रमणः ॥
झाणस्स भावणाविय ण हु सो आराहओ हवे जि
जो ण विजाणइ वत्थुं पमाणणयणिच्छयं किच्चा

णिच्छयसाहणहेऊ पज्जयदव्वत्थियं मुणह ॥ १८३
निश्चयव्यवहारनयौ मूलभेदौ नयानां सर्वेषाम् ।
निश्चयसाधनहेतू पर्यायद्रव्यार्थिकौ मन्यध्वम् ॥

दो चेवय मूलणया भणिया दव्वत्थि पज्जयत्थिगया।
अण्णे असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥ १८४ ॥
द्वौ चैव मूलनयौ भणितौ द्रव्यार्थपर्ययार्थगतौ ।
अन्येऽसङ्ख्यसंख्यास्ते तद्भेदा मन्तव्याः ॥

समनयाँस्त्रीनुपनयाँश्चाह—

णइगम संगह ववहा र तह य रिउसुत्तसद्दअभिरुढा।
एवंभूदो णव णयणेया तह उवणया तिण्णि ॥१८५॥
नैगमः संग्रहो व्यवहारस्तथाच ऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढाः ।
एवंभूतो नव नया ज्ञेयास्तथोपनयास्त्रयः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनैगमादिसप्तनयानां च यथासंख्यं भेदानाह—

दव्वत्थो दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं ।
तिविहं च णइगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥१८६
ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केक्का ।
उत्ता इह णयभेया उवणयभेया वि पभणामो॥१८७॥
द्रव्यार्थिको दशभेदः षड्भेदः पर्यायार्थिको ज्ञेयः ।
त्रिविधश्च नैगमस्तथा द्विविधः पुनः संग्रहस्तत्र
व्यवहारर्जुसूत्रौ द्विविकल्पौ शेषा हि
उक्ता इह नयभेदा

णिच्छयसाहणहेऊ पज्जयदव्वत्थियं मुणह ॥ १८३ ॥

निश्चयव्यवहारनयौ मूलभेदौ नयानां सर्वेषाम् ।
निश्चयसाधनहेतू पर्यायद्रव्यार्थिकौ मन्यध्वम् ॥

दो चेव य मूलणया भणिया दव्वत्थि पज्जयत्थिगया।
अण्णे असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥ १८४ ॥

द्वौ चैव मूलनयौ भणितौ द्रव्यार्थपर्यायार्थगतौ ।
अन्येऽसंख्यसंख्यास्ते तद्भेदा मन्तव्याः ॥

समनयाँश्चोपनयाँश्चाह—

णइगम संगह ववहारा तह य रिउसुत्तसद्दअभिरूढा ।
एवंभूदो णव णयणेया तह उवणया तिण्णि ॥१८५॥

नैगमः संग्रहो व्यवहारस्तथा च ऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढाः ।
एवम्भूतो नव नया ज्ञेयास्तथोपनयास्त्रयः ॥

द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनैगमादिसमनयानां च यथासम्भवं भेदानाह—

दव्वत्थो दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं ।
तिविहं च णइगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥१८६॥

ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केक्का ।
उत्ता इह णयभेया उवणयभेया वि पभणामो ॥१८७॥

द्रव्यार्थिको दशभेदः षड्भेदः पर्यायार्थिको ज्ञेयः ।
त्रिविधश्च नैगमस्तथा द्विविधः पुनः संग्रहस्तत्र ॥

व्यवहारर्जुसूत्रौ द्विविकल्पौ शेषा हि एकैके ।
उक्ता इह नयभेदा उपनयभेदानपि प्रभणामः ॥

कर्मणां मध्यगतं जीवं यो गृह्णाति सिद्धसंकाशं ।
भण्यते स शुद्धनयः खलु कर्मोपाधिनिरपेक्षः ॥

सत्ताग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति–

उप्पादवयं गउणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहिओ समये ॥१९२॥

उत्पादव्ययौ गौणौ कृत्वा यो गृह्णाति केवलां सत्ताम् ।
भण्यते स शुद्धनयः इह सत्ताग्राहकः समये ॥

भेदविकल्पनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति–

गुणगुणिआइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं ।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेयवियप्पेण णिरवेक्खो ॥१९३॥

गुणगुण्यादिचतुष्केऽर्थे यो न करोति खलु भेदं ।
शुद्धः स द्रव्यार्थिकः भेदविकल्पेन निरपेक्षः ॥

कर्मोपाधिसापेक्षमशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति–

भावे सरायमादी सव्वे जीवम्मि जो दु जंपेदि ।
सो हु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥१९४॥

भावान्रागादीन्सर्वान्जीवे यस्तु जल्पति ।
स हि अशुद्ध उक्तः कर्मणामुपाधिसापेक्षः ॥

उत्पादव्ययसापेक्षाशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति–

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं ।
दव्वस्स एयसमये जो सो हु असुद्धओ बीओ॥१९५॥

उत्पादव्ययविमिश्रां सत्तां गृहीत्वा भणति त्रितयम् ।
द्रव्यस्यैकसमये यः सहि अशुद्धो द्वितीयः ॥

भेदकल्पनासापेक्षाशुद्धद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति—

भेए सदि सम्बन्धं गुणगुणियाईहि कुणदि जो दव्वे ।
सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥१९६॥
भेदे सति सम्बन्धं गुणगुण्यादिभिः करोति यो द्रव्ये ।
सोऽप्यशुद्धो दृष्टः सहितः स भेदकल्पनया ॥

अन्वयद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति—

णिस्सेससहावाणं अण्णयरूवेण सव्वदव्वेहिं ।
विवहावणाहि जो सो अण्णयदव्वत्थिओ भणिदो॥१९७
निःशेषस्वभावानां अन्वयरूपेण सर्वद्रव्यैः ।
विभावनाभिः यः सोऽन्वयद्रव्यार्थिको भणितः ॥

स्वद्रव्यादिग्राहकपरद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकनयौ लक्षयति—

सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वं खु गिण्हए जो हु ।
णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीओ
॥१९८॥

स्वद्रव्यादिचतुष्के सद्द्रव्यं खलु गृह्णाति यो हि ।
निजद्रव्यादिषु ग्राही स इतरो भवति विपरीतः ॥ *

परमभावग्राहिद्रव्यार्थिकनयं लक्षयति—

गेण्हइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोवयारपरिचत्तं ।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥१९९॥
गृह्णाति द्रव्यस्वभावं अशुद्धशुद्धोपचारपरित्यक्तम् ।
स परमभावग्राही ज्ञातव्यः सिद्धिकामेन ॥

सम्प्रति पर्यायार्थिकस्य षड्भेदान् विवृणोति तत्र तावदनादिनित्यपर्यायार्थिकं लक्षयति—

अक्किट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गाही ।
जो सो अणाइणिहणो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ ॥२००॥

अकृत्रिमानानिधनान् शशिसूरादीनां पर्ययान् ग्राही ।
यः सोऽनादिनिधनो जिनभणितः पर्ययार्थिकः ॥

सादिनित्यपर्यायार्थिकं लक्षयति—

कम्मखयादुप्पण्णो अविणासी जो हु कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥२०१॥

कर्मक्षयादुत्पन्नोऽविनाशी यो हि कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरन् भण्यते स सादिनित्यनयः ॥

अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति—

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिण्हए जो हु ।
सो हु सहावअणिच्चोगाही खलु सुद्धपज्जाओ ॥२०२॥

सत्ताऽमुख्यरूपे उत्पादव्ययौ हि गृह्णाति यो हि ।
स हि स्वभावानित्यो ग्राही खलु शुद्धपर्यायम् ॥

अनित्याशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति—

जो गहइ एक्कसमये उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।
सो सब्भावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥२०३॥

यो गृह्णात्येकसमये उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम् ।

स भवत्यनित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकनयः ॥

कर्मोपाधिनिरपेक्षानित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था ।
जो सो अणिच्चसुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ ॥२०४

देहिनां पर्यायान् शुद्धान् सिद्धानां भणति सदृशान् ।
यः सोऽनित्यशुद्धः पर्यायग्राही भवेत् स नयः ॥

कर्मोपाधिसापेक्षानित्याशुद्धपर्यायार्थिकनयं लक्षयति—

भणइ अणिच्चासुद्धा चउगइजीवाण पज्जया जो हु ।
होइ विभावअणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥२०५

भणत्यनित्याशुद्धांश्चतुर्गतिजीवानां पर्यायान् यो हि ।
भवति विभावानित्योऽशुद्धः पर्यायार्थिकनयः ।

सामान्येनोक्तानैगमनयत्रिभेदान् लक्षणपुरस्सरमुदाहरति
तत्र तावद्भूतनैगमनयमाह—

णिव्वत्तअत्थकिरिया वट्टणकाले तु जं समायरणं ।
तं भूदणइगमणयं जह अज्ज णिव्वुइ वीरं ॥२०६॥

निर्वृत्तार्थक्रियायाः वर्तमानकाले तु यत्समाचरणम् ।
स भूतनैगमनयो यथाद्य दिने निर्वृतो वीरः ॥

भाविनैगमनयमुदाहरति—

णिप्पण्णमिव पयंपदि भाविपदत्थं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भाविणइगमत्ति णओ
॥२०७

निष्पन्नमिव प्रजल्पति भाविपदार्थं नरोऽनिष्पन्नम् ।
अप्रस्थे यथा प्रस्थो भण्यते स भाविनैगम इति नयः ॥

वर्तमाननैगमनयमुदाहरति—

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा
लोएसु पुच्छमाणो भण्णइ तं वट्टमाणणयं ॥२०८॥

प्रारब्धां यां क्रियां पचनविधानादि कथयति यः सिद्धां ।
लोकेषु पृच्छयमानो भण्यते स वर्तमाननयः ॥

संग्रहनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति-

अवरोप्परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणे ।
होइ तमेव असुद्धं इगिजाइविसेसगहणेण ॥२०९॥

अपर परमविरोधे सर्वमस्तीति शुद्धसंग्रहणं ।
भवति स एवाशुद्धः एकजातिविशेषग्रहणेन ॥

व्यवहारनयं लक्षयित्वा भेदौ सूचयति-

जो संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा ॥
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेदकरो ॥२१०॥

यः संग्रहेण गृहीतं भिनत्ति अर्थमशुद्धं शुद्धं वा ।
स व्यवहारो द्विविधोऽशुद्धशुद्धार्थभेदकरः ॥

ऋजुसूत्रनयं लक्षयित्वा भेदौ संसूच्य प्रथमभेदमुदाहरति-

जो एयसमयवट्टी गेण्हइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं सद्दं जहा खणियं ॥ २११॥

य एकसमयवर्तिनं गृह्णाति द्रव्ये ध्रुवत्वपर्यायम् ।
स ऋजुसूत्रः सूक्ष्मः सर्वः शब्दो यथा क्षणिकः ॥

द्वितीयभेदमुदाहरति--

मणुवाइयपज्जाओ मणुसोत्ति सगट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥२१२॥

मनुजादिपर्यायः मनुष्य इति स्वकस्थितिषु वर्तमानः ।
यो भणति तावत्कालं स स्थूलो भवति ऋजुसूत्रः ॥

शब्दनयं लक्षयति गाथाद्वयेन -

जो वट्टणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिंगआईणं ।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुंसाइआण जहा ॥२१३॥
अहवा सिद्धे सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं ।
सो खलु सद्दे विसओ देवोसद्देण जह देवो ॥ २१४॥

यो वर्तनं न मन्यते एकार्थे भिन्नलिङ्गादीनाम् ।
स शब्दनयो भणितः ज्ञेय पुंसादिकानां यथा ।
अथवा सिद्धे शब्दे क्रियते यत्किमपि अर्थव्यवहरणम् ।
स खलु शब्दे विषय देवशब्देन यथा देव ॥

समभिरूढनयं लक्षयति -

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो ।
भणइ [illegible] समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्को ॥२१५॥

शब्दारूढोऽर्थोऽर्थारूढस्तथैव पुन शब्द ।
भणतीह समभिरूढो यथेन्द्र पुरन्दर शक्र ॥

एवंभूतनयं लक्षयति-

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचेट्ठादो ।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूदो हवे स णओ ॥२१६॥

यदा करोति कर्म देही मनोवचनकायचेष्टनः ।
तस्मिन् मतु नामयुत एवंभूतो भवेत नय ॥
एतेषु नैगमादिषु नयेषु द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकं अर्थप्रधानं
शब्दप्रधानं वा विभजनं

पढमतिया दव्वत्था पज्जयगाही य इयर जे भणिया ।
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥२१७॥
प्रथमत्रिका द्रव्यार्थिकाः पर्यायग्राहिणश्चेतरे ये भणिताः ।
ते चत्वारोऽर्थप्रधानाः शब्दप्रधाना हि त्रय इतरे ॥

पण्णवण भाविभूदे अत्थे इच्छादि य वट्टणं जो सो ।
सव्वेसिं च णयाणं उवरिं खलु संपलोइज्जा ॥२१८॥
प्रज्ञापन भाविभूतेऽर्थे इच्छति च वर्तनं यः सः ।
सर्वेषां च नयानामुपरि खलु सम्प्रलोक्यः ॥

एतत्त्रयमन्तमावयात–

पण्णवण भाविभूदे अत्थे जो सो हु भेदपज्जाओ ।
अह वं एवंभूदो समवदो मुणह अत्थेसु २१९॥
प्रज्ञापनं भाविभूतेऽर्थे यः स हि भेदपर्यायः ।
स एवम्भूतः संभवतो मन्यध्वमर्थेषु ॥

कारकसब्भावदो य दव्वेसु ।
भेयं कुणये सब्भूयसुद्धियरो ॥२२०॥
णिपर्यायद्रव्ये कारकसद्भावतश्च द्रव्येषु ।
ज्ञात्वा भेदं क्रियते सद्भूतशुद्धिकरः ॥

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य एक्केण ।

दव्वे गुणपज्जाया गुण दवियपज्जया णेया ॥२२४॥
द्रव्यगुणपर्यायाणां उपचारस्तेषां भवति तत्रैव ।
द्रव्ये गुणपर्याया गुणे द्रव्यपर्यया ज्ञेयाः ॥

पज्जाए दव्वगुणा उवयरियं वा हु बंधसंजुत्ता ।
संबंधो संसिलेसो णाणीणं णाणणेयमादीहिं ॥२२५॥
पर्याये द्रव्यगुणा उपचरितमिव हि बंधसंयुक्ताः ।
संबंध सश्लेषः ज्ञानिना ज्ञानज्ञेयादिभिः ॥

स्वजातिपर्याये स्वजातिपर्यायारोपणोऽसद्भूतव्यवहारः

दट्ठूण पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ ।
सज्जाइ असब्भूओ उवयरिओ णियजाइपज्जाओ ॥२२६
दृष्ट्वा प्रतिबिंबं भवति हि स चैवैष पर्यायः ।
स्वजात्यसद्भूतोपचरितो निजजातिपर्यायः ॥

विजातिगुणे विजातिगुणारोपणोसद्भूतव्यवहारः

मुत्तं [illegible] मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जण्णिओ जह्मा ।
जइ णहु मुत्तं णाणं तो किं खलिओ हु मुत्तेण ॥२२७॥
मूर्तमिह मतिज्ञानं मूर्तिमद्द्रव्येण जनितं यस्मात् ।
यदि नहि मूर्तं ज्ञानं तर्हि किं स्खलितं मूर्तेन ॥

स्वजातिविजातिद्रव्ये स्वजातिविजातिगुणारोपणं असद्भूत-
व्यवहारः-

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं हु तस्स विसयादो ।
जो भणइ एरिसत्थं सो ववहारो असब्भूदो ॥२२८॥

उवयारो पज्जाए पुग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥२२०॥
दृष्ट्वा स्थूलस्कंधं पुद्गलद्रव्यमिति जल्प्यते लोके ।
उपचारः पर्याये पुद्गलद्रव्यस्य भणति व्यवहारः ॥

स्वजातिपर्याये स्वजातिगुणारोपणोसद्भूतव्यवहारः-

दट्ठूण देहठाणं वण्णंतो होइ उत्तमं रूवं ।
गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥२२१॥
दृष्ट्वा देहस्थानं वर्ण्यमान भवत्युत्तमं रूपम् ।
गुणोपचारो भणितः पर्याये नास्ति सन्देहः ॥
सव्वत्थ पज्जयादो संतो भणिओ जिणेहि ववहारो ।
जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दोण्णंपि तस्स कुदो ॥२२२॥
सर्वत्र पर्यायतोऽस्ति भणितो जिनैर्व्यवहारः ।
यस्य न भवेत्सत् हेतुर्द्वयोरपि तस्य कुतः ॥
चउगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुहं कम्मं ।
जइ तह मिच्छा किह सो संसारो संखमिव तस्समए
॥२२३॥
चतुर्गतिरिह संसारस्तस्य च हेतुः शुभाशुभं कर्म ।
यदि तथा मिथ्या कथं स संसारः सांख्य इव तत्समये ॥
एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो य जिणदिट्ठा ।
हिंसादिसु जइ पावं सव्वत्थवि किं ण ववहारो ॥२२४॥
एकेन्द्रियादिदेहा जीवा व्यवहारतश्च जिनदृष्टाः ।

कथं निश्चितिर्ज्ञानं अन्येषां भवति नियमेन ॥

असद्भूतव्यवहारः–

उवयारा उवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसुं ।
सज्जाइइयरमिस्से उवयरिओ कुणइ ववहारो ।२४०।
उपचारादुपचारं सत्यासत्येषूभयार्थेषु ।
सजातीतरमिश्रेषु उपचरितः करोति व्यवहारः ॥
देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जपंतो ।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चपि उभयत्थ ॥२४१॥
देशपतिः देशस्थः अर्थपतिर्यः तथैव जल्पन् ।
मम देशो मम द्रव्यं सत्यासत्यमपि उभयार्थम् ॥
पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपदादि जप्पंतो ।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥ २४२ ॥
पुत्रादिबंधुवर्गोऽहं च मम सम्पदादि जल्पन् ।
उपचारासद्भूतः स्वजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥
आहरणहेमरयणावच्छादीया ममेति जप्पंतो ।
उवयारियअसब्भूओ विजाइदव्वेसु णायव्वो ॥२४३॥
आभरणहेमरत्नवस्त्रादि ममेति जल्पन् ।
उपचरितासद्भूतो विजातिद्रव्येषु ज्ञातव्यः ॥
देसत्थरज्जदुग्गं मिस्सं अण्णं च भणइ मम दव्वं ।
उहयत्थे उवयरिदो होइ असब्भूयववहारो ॥ २४४ ॥
देशार्थराज्यदुर्गाणि मिश्रमन्यच्च भणति मम द्रव्यम् ।
उभयार्थे उपचरितो भवति असद्भूतव्यवहारः ॥

स्वभावानो यथा सम्यग्मिथ्यात्वं सापेक्षता च तथाह–

मियसावेक्खा सम्मा मिच्छारूवा हु तेहि णिरवेक्खा।
तह्मा सियसद्दादो विसयं दोह्णंपि णायव्वं ॥२४९॥

स्यात्सापेक्षाः सम्यञ्चः मिथ्यारूपा हि तैः निरपेक्षाः।
तस्मात्स्याच्छब्दाद्विषयो द्वयोरपि ज्ञातव्यः॥

अवरोप्परसावेक्खं णयविसयं अह पमाणविसयं वा।
तं सावेक्खं तत्तं णिरवेक्खं ताण विवरीयं ॥ २५० ॥

अपरापरसापेक्षो नयविषयोऽथ प्रमाणविषयो वा।
तत्सापेक्षं तत्त्वं निरपेक्षं तयोर्विपरीतम् ॥

स्याद्वादलाञ्छनस्य स्वरूपं निरूपयति–

णियमणिसेहणसीलो णिपादणादो य जोहु खलु सिद्धो।
सो सियसद्दो भणियो जो सावेक्खं पसाहेदि ॥ २५१ ॥

नियमनिषेधनशीलो निपातनाच्च यः खलु सिद्धः।
स स्याच्छब्दो भणितः यः सापेक्षं प्रसाधयति॥

उक्तं चान्यस्मिन्ग्रन्थे,

निसङ्गिकोऽयं स्याच्छब्दो युक्तोऽनेकान्तसाधकः।
निपातनात्समुद्भूतो विरोधध्वंसको मतः॥ १ ॥
... दिव्यध्वनिसमुद्भवः।
अत एव त्रिसंज्ञोऽयं सर्वज्ञैः परिभाषितः॥ २ ॥
सिद्धमंत्रो यथा लोके एकोऽनेकार्थदायकः।
स्याच्छब्दोऽपि तथा ज्ञेय एकोनेकार्थसाधकः॥ ३ ॥

तह मिय णयणिरवेक्खं जाणह दव्वे दुणयभंगी
॥ २५६ ॥

अस्तीति मात्स्युभयमात्मकमात्म्यं तथैव पुनस्त्रितयम्।
तथा नयनिरपेक्षं जानीत द्रव्येषु दुर्नयभंगी ॥

सप्तभङ्गीविवरणायां ज्ञेयं सप्तधर्मनोत्पायं धर्मधर्मिणोः कथं
कर्तव्यानेकत्वं चाह—

एक्कणिरुद्धे इयरो पडिवक्खो अणवरेइ सब्भावो।
सव्वेसिं च सहावे कायव्वा होइ तह भंगी ॥ २५७ ॥

एकनिरुद्धे इतरः प्रतिपक्षोऽनुवर्तते स्वभावः।
सर्वेषां च स्वभावे कर्तव्या भवति तथा भङ्गी ॥

धम्मी धम्मसहावो धम्मा पुण एक्कएक्कतण्णिट्ठा।
अवरोप्परं विभिण्णा णायव्वा गउणमुक्खभावेण॥२५८

धर्मी धर्मस्वभावः धर्माः पुनरेकैकतन्निष्ठाः।
अपरापरं विभिन्नाः ज्ञातव्या गौणमुख्यभावेन ॥

सापेक्षतासाधकमनेकत्वं युक्तिस्वरूपं चाह—

मियजुत्तो णयणिवहो दव्वसहावं भणेइ इह तच्चं।
सुणयपमाणा जुत्ती णहु जुत्तिविवज्जियं तच्चं ॥२५९॥

स्याद्युक्तो नयनिवहो द्रव्यस्वभावो भणति इह तथ्यम्।
सुनयप्रमाणा युक्तिर्नहि युक्तिविवर्जितं तत्त्वम् ॥

तत्त्वस्य हेयोपादेयत्वमाह—

तच्चं पि हेयमियरं हेयं खलु भणिय ताण परदव्वं।

इयरा इयरा भणिया ठवणा अरिहो य णायव्वो।
साकारेतरा स्थापना कृत्रिमेतरा हि बिम्बा प्रथम। ।
इतरा इतरा भणिता स्थापनाऽर्हंश्च ज्ञातव्यः ॥

द्रव्यनिक्षेपस्य भेदप्रभेदान्सोदाहरणं निरूपयति—
दव्वं खु होइ दुविहं आगमणोआगमेण जह भणियं।
अरहंतसत्थजाणो अणजुत्तो दव्व-अरिहंतो ॥२७
द्रव्यं खलु भवति द्विविधं आगमनोआगमाभ्यां यथा भणि
अर्हच्छास्त्रज्ञायकोऽनुपयुक्तो द्रव्यार्हन् ॥
णोआगमं पि तिविहं देहं णाणिस्स भावि कम्मं च
णाणिसरीरं तिविहं चुद चत्तं चाविदं चेदि ॥२७५॥
नोआगमोऽपि त्रिविधः देहो ज्ञानिनो भावि कर्म च।
ज्ञानिशरीरं त्रिविधं च्युतं त्यक्त च्यावितं चेति ॥

भावनिक्षेपभेदमुदाहरति—
आगमणोआगमदो तहेव भावो वि होदि दव्वं वा।
अरहंतसत्थजाणो आगमभावो हु अरहंतो ॥२७६॥
आगमनोआगमतस्तथैव भावोऽपि भवति द्रव्यमिव।
अर्हच्छास्त्रज्ञायकः आगमभावो हि अर्हन् ॥
तग्गुणए य परिणदो णोआगमभाव होइ अरहंतो।
तग्गुणएई झादा केवलणाणी हु परिणदो भणिओ ॥२७
तद्गुणैश्च परिणतो नोआगमभावो भवत्यर्हन्।
तद्गुणैर्ध्याता केवलज्ञानी हि परिणतो भणितः ॥

जइ गुणपज्जयवंतं दव्वं भणियं खु अण्णसूरीहिं ।
तातं तिरूपं तस्स य तेहिं पिय एरिस भणियं ॥२७८॥
यथ गुणपर्ययवद् द्रव्यं भणितं खलु अन्यसूरिभिः ।
तत् त्रयं तस्य च तैरपि चेदृश भणितम् ॥

जो इदं भणियव्वं भिण्णं काऊण एसु णिक्खेवं ।
तस्सेव दंसणट्ठं भणियं काऊणमिह सुत्तं ॥२७९॥
यो इदं भणितव्य भिन्न कृत्वा एषु निक्षेपम् ।
तस्यैव दर्शनार्थं भणित कृत्वेह सूत्रम् ॥

निक्षेपाख्ये पदार्थानयति

एदेसु जाण णामं तहेव ठवणा हु थूलग्गिउमुत्तं ।
दव्वं पिय उवयारे भाव पज्जायमज्झगयं ॥२८०॥
एतेषु जानीहि नाम तथैव स्थापना हि स्थूलमूर्त ।
द्रव्यमपि चोपचारे भाव पर्यायमध्यगतम् ॥

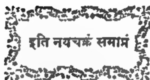
निक्षेपादिज्ञानस्य प्रयोजनमाचष्टे –

णिक्खेव णय पमाणं णादूणं भावयंति जे तच्चं ।
ते तत्थतच्चमग्गे लहंति लग्गा हु तत्थयं तच्चं ॥२८१॥
निक्षेप नय प्रमाण ज्ञात्वा भावयन्ति ये तत्त्वम् ।
ते तत्त्वतत्त्वमार्गे लभन्ते लग्ना हि तत्त्व तत्त्वम् ॥

गुणपज्जयाण लक्खण सहाव णिक्खेव णय पमाणं वा ।
जाणदि जदि सवियप्प दव्वसहाव खु बुज्झेदि ॥२८२॥
गुणपर्यायाणां लक्षण स्वभाव निक्षेप नय प्रमाण वा ।
जानाति यदि सविकल्प द्रव्यस्वभाव, खलु बुध्यते ॥

इति निक्षेपार्थः कथनम् ॥

दुःसमीरणेन पोतप्रेरितं सत् यथा तीरं नष्टम्।
श्रीदेवसेनमुनिना तथा नयचक्रं पुनारचितम्॥



ॐ

श्रीमद्देवसेनविरचिता

आलापपद्धतिः ।

(७)

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च ।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते
व किमर्थम् ? द्रव्यलक्षणसिध्यर्थं स्वभावसिध्यर्थं च । द्र
लाणि ? जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि । सद् द्रव्यलक्ष
त्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् । इति द्रव्याधिकारः ।

लक्षणानि कानि ? अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमे
अगुरुलघुत्वं (१), प्रदेशत्वं (२), चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वम
द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः । प्रत्येकमष्टावष्टौ सर्वेषाम् ।

[एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति । जीवद्रव्ये अचेतनत्वं
त्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वं च नास्ति, धर्माधर्म
शकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति । एवं द्विद्विगुण
अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति [३] ।]

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगन्धवर्णाः गतिहेतुत्वं स्थिति

---

१ सूक्ष्मा अवाग्गोचरा प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युप
अगुरुलघुगुणाः । २ क्षेत्रत्वं अविभागि पुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम् । ३
पुस्तकेऽधिकपाठः ।

वः(१), मूर्तस्वभावः [२], अमूर्तस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभावः, एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः (३)। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः—चेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, एतैः पञ्चभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति। तत्र बहुप्रदेशं विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः (४)।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः॥३॥

ते कुतो ज्ञेयाः? प्रमाणनयविवक्षातः। सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्। तद् द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात्। अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ। केवलं सकलप्रत्यक्षं। मतिश्रुते परोक्षे। प्रमाणमुक्तं। तदवयवा नयाः।

नयभेदा उच्यन्ते,—

णिच्छयववहारणया (५) मूलमभेयाण णाण सव्वाणं।
णिच्छयसाहणहेओ दव्वयपज्जत्थिया मुणह॥४॥

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजु-

---

१ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः। २ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः।

३ "तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तु भावोऽभिधीयते"॥ ४ काले एकप्रदेशमात्रत्वात् अत एव बहुप्रदेशत्वस्वभावाभावेऽपि पंचदशैव सम्भवन्ति किन्तु तत्र उपचरितस्वभावोऽपि निषिध्यते तदपेक्षया पंचदश इति। ५ निश्चयनयो द्रव्यार्थिको व्यवहारनयः पर्यायार्थिकः

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदा उच्यन्ते,—

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा— पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वा सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायो नित्यः । सत्तागौण नोत्पादव्ययग्राहकस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—स समयं प्रति पर्याया विनाशिनः । सत्तासापेक्षस्वभावो नि शुद्धपर्यायार्थिको यथा—एकस्मिन् समये त्रयात्मकः (१) र्यायः । कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायार्थिको सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः । कर्मोपाधिसा क्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—संसारिणामुत्पत्तिम रनः । इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्तमानकालभेदात् । अतीते वर्तमाना पण यत्र स भूतनैगमो यथा—अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमा स्वामी मोक्षं गतः । भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भावि गमो यथा—अर्हन् सिद्ध एव । कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा—ओदनः पच्यते । इति नैगमस्त्रेधा ।

संग्रहो द्विविधः । सामान्यसंग्रहो यथा—सर्वाणि द्रव्याणि प रस्परमविरोधीनि । विशेषसंग्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परमवि रोधिनः । इति संग्रहोऽपि द्वेधा ।

व्यवहारोऽपि द्वेधा । सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा—

१ पूर्वपर्यायस्य विनाश उत्तरपर्यायोत्पादो, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वं ।

यथा—देशराज्यदुर्गादि मम। इत्युपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

सहभावा गुणाः (१), क्रमवर्तिनः पर्यायाः। गुण्यते पृथक्क्रि-
यते द्रव्यं द्रव्यान्तराद्यैस्ते गुणाः। अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रू-
पत्वम्। वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु। द्रव्य-
स्वभावो द्रव्यत्वम्। निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभा-
पर्यायान् द्रवति (२) द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम्। सद्द्रव्यलक्ष-
णम्। सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्। उत्पादव्य-
यध्रौव्ययुक्तं सत्। प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्। प्रमाणेन स्वपरस्वरू-
परि(३)च्छेद्यं प्रमेयम्। अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्। सूक्ष्मा वागगो-
चराः प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः

" सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः"॥५॥

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनावष्ट-
(४)। चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् (५) चैतन्यमनुभवनम्।

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम्॥६॥

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम्। मूर्तस्य भावो
मूर्तत्वं (६) रूपादिमत्त्वम्। अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्व-
म्। इति गुणानां व्युत्पत्तिः। स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परि-

१ सन्ताश्रय। २ प्रवर्तते। ३ ज्ञातुं योग्यम्। ४ व्याप्तं। ५ अनु-
निर्विकल्पदर्शनोपयोग चेतनमात्रम्। ६ रूपरसगन्धस्पर्श

" दुर्णयैकांतमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते ।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलंका नया यतः " ॥८॥

तत्कथं ? तथाहि—सर्वथैकांतेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था (१) संकरादिदोषत्वात्, तथा सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात्. नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः . अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनित्यपक्षेपि अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः (२), अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभाव. सर्वथैकरूपत्वात्, विशेषाभावे सामान्यस्याप्यभावः ।

" निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि" ॥९॥ इति ज्ञेयः ।

अनेकपक्षेपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेयाभावाच्च । भेदपक्षेपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वाभावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अभेदपक्षेपि सर्वेषामेकत्वम् । सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यस्यैकांतेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यांतरत्वप्रसंगात् संकरादिदोषसंभवात् । संकरव्यतिकरविरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेति । सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वभावस्वरूपस्यैकान्ते संसाराभावः । विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः । सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते

१ यथा सिंहो माणवकः (माणवको मार्जारः) २ नित्यपक्षवदित्यपि पाठः ॥

स्वभावः । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः । अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकस्वभावत्वम् । सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः । भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः । परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः । शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण [१] चेतनस्वभावो जीवस्य । असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ॥

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः । परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोर्मूर्तस्वभावः । जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्तस्वभाव. [२] । पुद्गलस्योपचारादेवास्त्यमूर्तत्वम् । परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम् । भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वं । भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेशस्वभावत्वं । पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं न च कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात् । अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्तकालस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात् । परोक्षप्रमाणापेक्षया सद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेण.मूर्तत्वं । पुद्गलस्य शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभावत्वम् (३) । शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः । अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः । असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः ॥

" द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेपि व्यवस्थितम् ।

१ नेदं । २ जीवधर्माधर्माकाशकालानाम् ३ जीवपुद्गलयोः ।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः । शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः । अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः ।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।

नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः । अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः । संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु येन व्यवह्रियत इति व्यवहारः । ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः । शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः । परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः । शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति । यथा शक्र इंद्रः पुरंदर इत्यादयः समभिरूढाः । एवं क्रियाप्रधानत्वेन (१) भूयत इत्येवंभूतः । शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ । अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः । भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः । गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदक. सद्भूतव्यवहार. अन्यत्र (२) प्रसिद्धस्य धर्मस्या [३] न्यत्र (४) समारोपणमसद्भूतव्यवहारः । असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः। गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः । द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये

---

१ एवंभूतस्तुक्के कोर्थः क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम् २ पुद्गलादौ ।
३ स्वभावस्य ४ जीवादौ ।

तव्यवहारो यथा-जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः । असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र संश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति । संश्लेषसहितवस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-जीवस्य (१) शरीरमिति ॥

इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनविरचिता परिसमाप्ता ॥



१ 'देवदत्तस्य' इति ख पाठः ।